

ये हैं मेरी नारियाँ

लेखक

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पी-एच.डी., डी-लिट्

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर-302 015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

ये हैं मेरी नारियाँ	:	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
प्रथम संस्करण (18 अक्टूबर, 2015)	:	5 हजार
कुल	:	<u>5 हजार</u>

मूल्य : पाँच रुपये

टाइपसेटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स,
ए-4, बापूनगर, जयपुर

मुद्रक :
रैनवो ऑफसेट प्रिंटर्स
बाईस गोदाम, जयपुर

विषय सूची

1. ये हैं मेरी नारियाँ	
(क) पहली - हँसी	1
(ख) दूसरी - लेखनी	3
(ग) तीसरी - निद्रा	5
(घ) चौथी - आशा	8
2. यह हैं मेरी परम पूज्य मातायें	
(क) पहली - जन्मदात्री	11
(ख) दूसरी - सरस्वती	14
(ग) तीसरी - पृथ्वी	17
(घ) चौथी - लक्ष्मी	20
3. मेरा साम्राज्य	23
4. अभिमान	29
5. उद्धार	33
6. प्रेम क्या है?	38
7. मानवता की ओर	42

प्रकाशकीय

डॉ. भारिल्ल के पुराने कागजों में हमें उनकी कुछ रचनायें और उपलब्ध हुई हैं। उनमें कुछ रेखाचित्र और कुछ ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखी गई आंचलिक कहानियाँ हैं।

जब मैंने सबसे पहले इन कहानियों को पढ़ा तो मुझे कुछ विशेष नहीं लगा; पर जब डॉक्टर साहब से चर्चा की और उन्होंने समझाया तो बहुत कुछ स्पष्ट हुआ। फिर मैंने अनेक बार पढ़ा और मुझे इनके अध्ययन में खूब रस आया।

अठारह वर्ष की उम्र में तत्कालीन पृष्ठभूमि पर लिखी गईं उक्त रचनायें उस समय की सामाजिक स्थिति को तो चित्रित करती ही हैं, विषमताओं को भी बखूबी स्पष्ट करती हैं।

ई. सन् 1953 में जब ये रचनायें लिखी जा रहीं थी; तब भारत आजाद हो चुका था, किन्तु सामाजिक विषमता सर्वत्र व्याप्त थी।

गरीबी का चारों ओर साम्राज्य था। किसान साहूकारों के पंजे में थे और वे उनका भरपूर शोषण कर रहे थे।

राजनीतिक आजादी मिल चुकी थी, पर आर्थिक विषमता सर्वत्र व्याप्त थी।

सामाजिक स्तर पर कुरीतियों का साम्राज्य था।

शिक्षा का अभाव था, न तो शिक्षा की उचित व्यवस्था थी और न समाज में रुचि थी। महिलाओं की स्थिति भी अच्छी नहीं थी।

ऐसी विषमताओं में एक विद्रोही युवक के द्वारा यह स्रजन हुआ है।

यही कारण है कि कहानियों पर प्रेमचन्द की कहानियों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

चार मातायें और चार नारियों में उन्होंने अपने मानसिक परिकर को प्रस्तुत किया है।

जिस समय ये कहानियाँ लिखी गई थीं; उस समय उन्हें आध्यात्मिक रुचि नहीं थी। अतः रचनाओं में अध्यात्म की खोज करना व्यर्थ ही है।

डॉ. भारिल्ल जन्मजात लेखक व कवि हैं। यह बात भी इन कृतियों से सहज ही स्पष्ट होता है।

इन यथार्थवादी कहानियों में उन्होंने समाज के वे कुत्सित चित्र प्रस्तुत किये हैं, जिन्हें उन्होंने अपनी आँखों से देखा था, भोगा था, अनुभव किया था।

डॉ. भारिल्ल के साहित्य पर शोधकार्य करते हुये डॉ. महावीर जैन ने अपने शोधप्रबंध में उक्त कृतियों का उल्लेख किया है, इनकी समीक्षा भी की है।

सम्पन्न कहे जाने वाले लोग चौराहे पर बैठकर किसप्रकार की डींगे हांका करते थे। **अभिमान** नामक कहानी में उसका पूरा चित्र प्रस्तुत किया है। उसके दुष्परिणाम का चित्रण भी किया है।

ये पैसे वाले लोग और पेशेवर पंडित मिलकर समाजोद्धार के नाम पर क्या-क्या अनर्थ करते हैं और उसके परिणाम भी भोगते हैं। इसका चित्रण **उद्धार** नामक कहानी में किया गया है।

शिक्षा के प्रति उपेक्षा और वैवाहिक कुरीतियों का चित्रण **मेरा साम्राज्य** नामक कहानी में किया गया है।

‘**प्रेम क्या है?**’ कहानी में माँ-बेटे का प्रेम ही वास्तविक प्रेम है; बाकी सब तो जो है, सो है। यह बताया गया है।

‘**मानवता की ओर**’ कहानी में विषमता के इस युग में विद्रोही युवक की मानसिक अवस्था का चित्रण किया गया है।

उक्त पाँचों कहानियों के पढ़ने से तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान हो जाता है। उक्त कृति का अध्ययन करते समय उक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है। लेखन की भाषा-शैली भी एक अठारहवर्षीय अनाड़ी किशोर की ही है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है – यह ध्यान रखना भी आवश्यक है।

सुन्दरतम रचनाओं के लिये डॉ. भारिल्ल, प्रकाशन व्यवस्था के लिये अखिल बंसल और कम्पोजिंग के लिये कैलाशचन्द्र शर्मा को हार्दिक धन्यवाद।

हृ. यशपाल जैन, एम.ए.

प्रकाशन मंत्री

ये हैं मेरी नारियाँ

पहली – हँसी

हंसी अच्छी भी है और बुरी भी; इससे मैंने भी अनेक लाभ उठाये हैं तथा हानि भी कम नहीं उठाई। लाभ तो साक्षात् ही है चिन्ता से मुक्ति, अब हानि सुनिये।

एक मेरा मित्र ही समझिये, जिनका अध्ययन आँग्ल भाषा का चलता है। एक दफा उनके ऊँचे फुल पेन्ट को देखकर मुझे हँसी आ गई, जिसके परिणाम स्वरूप उसी दिन से मेरे और उनके बीच एक गहरी खाई पड़ गई।

किन्तु मैं अपनी इस सहचरी का साथ नहीं छोड़ना चाहता; क्योंकि यह मेरे सदा साथ रहने वाली है; सुख में दुःख में। नश्वर होते हुये भी नित्य है। चिन्ता ग्रसित हृदय को हलका करने वाली हैं। बिगड़ी हुई बातों को बनाने वाली है तथा कहीं कहीं पर बने हुये काम बिगाड़ भी देती है। विरोध की खाई बढ़ाने वाली होते हुए भी मिटाने वाली भी है।

इसकी प्रशंसा कहाँ तक करूँ – रोगियों को रामबाण औषधि है, मेरी अनुगामिनी एवं आज्ञाकारिणी है। घर में, वन में, देश में, परदेश में, सदा साथ रहती है; किन्तु साथ में धीट भी बहुत है। बहुत रोकने पर भी नहीं रुकती; वहीं पर मुझे वह शत्रु सी प्रतीत होने लगती है।

ठीक ही है, आज्ञा का उल्लंघन करने वाली सहचरी को कौन पसन्द करेगा, किन्तु जब विशेष सोचता हूँ, तब ध्यान में आता है कि इसके बिना मेरा कार्य नहीं चल सकता तथा फिर प्रेम उमड़ पड़ता है एवं वह भी होठों को स्पर्श करती हुई आ धमकती है।

उस समय वे द्वेष की भावनायें न मालूम कहाँ चली जाती हैं।

उस समय हम दोनों एकमेक एवं अभिन्न हो जाते हैं; और मैं कहने लगता हूँ कि हे अभिन्नहृदये! जब हम दोनों एक हैं तो किसी की ताकत नहीं, जो हमको अलग-अलग कर सके। बकने वालों को बकने दो।

अब आप ही बताइये कि ऐसी पतिपरायणा एवं सहृदया को, हमेशा प्रसन्न रखने वाली सहचरी को; दूसरों के कहने मात्र से कैसे छोड़ दूँ?

यदि आप कहे राम ने पतिपरायणा सीता को तो छोड़ दिया था, तो मैं कहूँगा कि आज के मानव शास्त्र में वह अविवेक की पराकाष्ठा थी।

मैं राम पर कोई आक्षेप नहीं लगा रहा हूँ। न मुझे उनके सम्बन्ध में समालोचना करने का अधिकार भी है; किन्तु हाँ, यह अवश्य है कि मैं उनके इस आदर्श को अपना नहीं बना सकता, चाहे आप मुझे कामी एवं मोही की उपाधियों से क्यों न विभूषित कर डाले, पर मैं इस प्रेम सूत्र को तोड़ नहीं सकता, चाहे आज का समाज मुझे बहिष्कृत ही क्यों न कर दे।

मैं अधिक क्या लिखूँ मेरे लिये संसार की सारी विभूतियाँ उस सहचरी के सामने तुच्छ हैं, न के बराबर हैं।

यदि एक अवगुण भी हुआ तो क्या? वह भी साधारण सी धृष्टता, जो कि उसके गुणों के सामने कोई कीमत नहीं रखती। इतना कहने के बाद आप मेरी सारी स्थिति समझ गये होंगे। अब आप ही बताइये कि क्या मेरा कार्य अनुचित है?

मेरा विश्वास है कि शायद आप भी उसे छोड़ने को तैयार न होंगे। अस्तु, जो भी हो आप कुछ भी क्यों न कहें; पर मैं इस निर्दोष अबला का परित्याग नहीं कर सकता।

इससे आप यह न समझ बैठिये कि मैं मोहान्ध हूँ, नारी विज्ञान को नहीं समझता; पर बात यह है कि जो वस्तु कसौटी पर कसने पर निर्दोष निकले उसको त्यागना निरा पागलपन है।

अच्छा! अब आप लोग पधारिये, फिर कभी मिलेंगे; अभी श्रीमतीजी पधार रही हैं, ऐं वह तो आ ही गईं। अहहा! ●

दूसरी – लेखनी

ऐसी वीर एवं निर्भीक सहचरी बड़े भाग्य से ही प्राप्त होती हैं।

अच्छे अच्छों से न चूकने वाली, वचन रूपी वाणी को कैद करने वाली, जिसको इसने अपनाया आराध्य बनाया, उसका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा दिया।

आचार्य श्री जिनसेन, गुणभद्र, अकलंक, समन्तभद्र, कविराज कालिदास, भवभूति आदि के सदा साथ रहने वाली ऐसी सहचरी को प्राप्त कर कौन प्रसन्न न होगा?

कलमुखी हुई तो क्या हुआ? चमड़े की जाँच चमार ही करते हैं। चमड़े को देखने की क्या आवश्यकता? हमें तो गुण देखने हैं, गुण। श्रीकृष्ण भी तो काले थे, क्या तीर्थकर नेमिनाथ काले नहीं थे? काला होना कोई अपराध नहीं, दुर्गुण नहीं, कलंकनी नहीं होना चाहिये, हृदय काला न होना चाहिये।

आज के युवक चाहे गोरियों के पीछे दौड़े, उन्हीं को पसन्द करें, कालियों का नाम सुनते ही चाहे नाक भों सिकोड़े, पर मैं तो इन गोरी-गोरियों को देखकर अपनी इस कलमुहीं को तलाक नहीं देना चाहता।

आप चाहे जितना भी लोभ दें, दहेज दें; पर आपकी गोरी-गोरी कन्यायें मेरे किसी काम की नहीं।

देखो! यह क्लर्क का काम भी कर देती है। जो भी हृदयगत भाव उमड़ते हैं, उनको शीघ्र नोट करने वाली तथा अच्छे अच्छे वीरों को कैद करा देने वाली, सबसे सस्ती है।

इसके यहाँ से अभी दहेज अवश्य नहीं मिला, पर इसके भाई अनेक हैं – अतः भविष्य में आमदनी कराने वाली भी होगी।

हाँ! हाँ! यदि दहेज न मिला तो खर्च भी कौन सा हुआ है? सच कहता हूँ हमारा यह विवाह बड़ा ही सस्ता निपटा है। बताओ! आज के जमाने में इतना सस्ता किसका निपटता है? लोगों ने समालोचनायें की; पर इसने सबके मुख मोड़ दिये।

तथा आपके हाथ में है ही क्या? अधिक से अधिक यह कह लेंगे कि 'बड़े आदर्शवादी बने फिरते हैं। पैसे के लोभ में कल-मुँही को ब्याह लाये। देखा न भाला'। कहना है तो कह डालिये, पर ध्यान रखिये कि मैं तो कुछ न कहूँगा; पर यदि सहचरी श्री लेखनी देवी को पता चल गया तो आपकी फिर खैर न समझिये। आपकी खबर ले डालेगी। इसने अच्छों अच्छों का भँडा फोड़ कर रख दिया। ध्यान रखना!

बताओ! ऐसी सहचरी पाकर कौन प्रसन्न नहीं होगा और क्यों? लेखनी चाहे तो दुनियाँ को नचावे, जो चाहे कर सकती है। हर दम मेरे हाथों में रहने वाली, हालांकि इसके सम्पर्क में रहने वाली अंगुलियों को भी यह अपना कालापन प्रदान करती रहती है; पर इतने से दोष होने पर इसे छोड़ दूँ - मैं ऐसा पागल थोड़े ही हूँ।

हे आज्ञाकारिणे! आओ, आओ। तुम्हें कैसे छोड़ूँगा? तुम मेरी आज्ञा ही क्या इच्छा के विरुद्ध भी नहीं चलती तो क्या तुम छोड़ने लायक हो?

प्रिये! मैं तुम्हें पाकर दुनियाँ को भुला सकता हूँ, चिन्ता मत करो। तुम्हारी बदसूरती मेरे पर कोई असर नहीं करती। आज से तुम्हें द्वितीय पट्टराणी के पद से सम्मानित किया जाता है -

आओ हे सहचरि लेखनि तुम जलने वालों को जलने दो।
हम रहे प्रेम से हरदम कर मलने वालों को मलने दो ॥



तीसरी – निद्रा

हे निद्रा देवी!

मैं आप पर लड्डू हूँ! आपकी प्रशंसा कहाँ तक करूँ?

विपत्ति में आप ही सहारा देती हो। ऐसी सेवाभावी नारी भाग्यहीनों को प्राप्त नहीं होती।

रोजाना की थकान दूर करने वाली, पाँचों इन्द्रियों को विराम देने वाली हे निद्राके! तुम्हें कौन मूढ़बुद्धि ठुकरायेगा?

हास्य रानी भी विपत्ति आने पर न मालूम कहाँ गायब हो जाती है। न मालूम तुम्हें छोड़कर मैंने उन्हें क्यों प्रथम पट्टराणी का स्थान दे दिया?

अस्तु! भूल हुई सो हुई। भूल क्या हुई उसकी मंद मंद मुस्कान मुझे विह्वल कर देती है। उसका यही गुण चुनाव क्षेत्र में हाथ मार गया।

खैर चिन्ता न करो। तीसरा नम्बर होने से तुम्हारा तृतीयांश सदा ही सुरक्षित रहेगा। मेरे २४ घंटों में से आठ घंटे तुम्हारे समागम में बीतेंगे, कुछ भी क्यों न हो।

समझ लो! मैं तुम्हें यह वचन दे चुका, तुम्हारा अधिकार कोई नहीं छीन सकता; अब तो प्रसन्न हो ना? तुम्हारी अप्रसन्नता मुझे अस्वस्थ कर देती है।

जब से मैं अपनी प्रतिज्ञा बराबर निभाता आ रहा हूँ, एक भी दिन वचन टालने की मेरी हिम्मत न हुई, तथा फिर निश्चित कर दिया कि शीतल और शान्त वातावरण युक्त समय ही प्राणप्यारी को दिया जाय।

फलस्वरूप निश्चय कर दिया कि रात के दस बजे से सुबह के छह बजे तक का समय ही महारानी निद्रा देवी को दिया जायेगा।

इतने पर भी अब बताइये कई महानुभाव मुझसे कहा करते हैं कि आप चार बजे क्यों नहीं उठते? वे यह नहीं जानते कि मैं वचनबद्ध हूँ।

अथवा जानते होंगे तो उनकी दृष्टि में वचन की/जुबान की कोई कीमत नहीं। कहकर बदल जाने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती।

हे मित्रों! यदि मुझे आप हरिश्चन्द्र सरीखा सत्यवादी और दशरथ सरीखा वचन पालक देखना चाहते हो तो अब मुझसे छह बजे के पहले उठने को कहना छोड़ दें।

किसी विशेष कारण होने पर जब मैं उक्त समय के पहले उनका समागम छोड़ना चाहता हूँ तो वो मुझे टोकती हैं, आग्रह करती हैं, इतने पर भी जब मैं नहीं मानता तब प्रतिज्ञा की याद दिला देती, तब तो मैं पानी पानी हो जाता हूँ और जब उठ के जाना ही पड़ता है तो उनको साथ ले जाना पड़ता है, आँखे झपकती ही रहती हैं।

भैया! अच्छा फँसा! यदि दश बजे मैं शयनागार में न पहुँचा तो बुलावे पर बुलावे आते हैं, तब भी यदि नहीं पहुँच पाता तो श्रीमतीजी स्वयं पधार जाती हैं। इतने पर भी न गया तो वहीं पर वह अपना काम प्रारंभ करने लगती है। आँखें झपकने लगती हैं, आखिर दोस्तों से बिदा लेनी ही पड़ती है।

मैं ने वचन देकर आफत मोल ले ली है; क्योंकि कभी कभी लेट हो ही जाता हूँ, तब उनकी खरी-खोटी सुननी ही पड़ती हैं; पर यह उनका अपराध नहीं, मैंने उन्हें वचन क्यों दिया और यदि वचन दे दिया तो फिर उसका पालन करना ही चाहिये।

दुनियाँ चाहे राम के वनवास में कैकेई का अपराध माने; पर मैं तो नहीं मान सकता। दशरथ को वचन सोच समझकर देना था। उस समय तो ध्यान न रखा और बाद में कैकेई को दोष देने लगे – ऐसा स्वभाव मेरा नहीं है।

पुरुषों में सबसे बड़ी कमजोरी तो यही है कि पहले वे अपनी नारियों को प्रसन्न करने के उद्देश्य मात्र से चाहे जो कह देते हैं और

फिर नारी की बुद्धि पर तरस खाने लगते हैं; पर वे अपनी बुद्धि पर क्यों नहीं पछताते? कुछ भी हो, जब मैं बंधन में बंध चुका तो अब बंधन को तोड़ नहीं सकता। आगे अवश्य सतर्क रहूँगा।

मित्रों! ध्यान से सुन लो। अब आप मेरी दुधारी तलवार की धार को समझ गये होंगे; अतः यदि आप लोग अपने मित्र को कर्तव्य से च्युत नहीं करना चाहते हो तो आगे से मुझे चार बजे उठने को न कहना।

आप ही बताओ! वह मुझे परेशान तो करती नहीं, फिर मैं क्यों उसके साथ विश्वासघात करूँ?

हे कमनीय कान्ते निद्रके! तुम क्या यह सब सुन रही थीं? बुरा न मानना। इन मुओं से ऐसा कहना ही पड़ता है।

वस्तुतः मेरा हृदय तो तुम्हारे शीतल समागम को तरसता ही रहता है। देखा! आजकल गर्मियों में थोड़ा टाईम दिन में भी निकाल कर आ ही जाता हूँ।

तुम ही बताओ, ये लोग तो कुछ भी कहते रहते हैं, मेरा व्यवहार तुम्हारे साथ कैसा है? एक बात मैं अवश्य कहूँगा कि तुम अपने टाईम के बाद कार्य करते समय मुझे परेशान न किया करो।

अच्छा रानी! जरा तुम ठहरो! बाहर खड़े दोस्तों से दो चार बातें करनी है।

पाठको! ध्यान रखना कि मैं दशरथ से कम नहीं, उनकी भी चार पट्टरानियाँ थी और मेरी भी चार रानियाँ हैं, मात्र नाम का भेद अवश्य है। वे भी तृतीय पट्टरानी कैकेई से बचनबद्ध थे और मेरी निद्रा रानी भी तीसरी ही है।

अच्छा! अब आप पधारें, हमारा समय होने जा रहा है; आपसे फिर मिलेंगे।

आओ हे निद्रा देवी, मुझको थकान कुछ आई।

निद्रा देवी मुस्काई, बोली मैं आई आई ॥ ●

चौथी – आशा

हे प्रिये!

तुम ही बताओ तुम्हें कौन छोड़ सकता है? बड़े बड़े योगी भी न छोड़ सके। बातें अवश्य बनाते हैं; क्योंकि वे बनाने की ही होती हैं; पर वे तुम्हें छोड़ न सके। उन्हें भी कुछ न कुछ आशा लगी ही रहती है।

भगवान महावीर, गौतम बुद्ध, दाशरथी राम आदि ने सब छोड़ा। बताओ क्या नहीं छोड़ा? घर बार, दोस्त-यार, सभी तो छोड़े; पर तुम्हें न छोड़ सके। यह सब तुम्हारे आकर्षण का ही प्रभाव है।

तुम में वह शक्ति मौजूद है कि संसार तुम्हें ठुकरा नहीं सकता। ठुकरायेगा तो पछतायेगा।

तुम्हारे ऊपर आसमान और पृथ्वी थमी हुई है। तुम न होती तो आसमान कहाँ होता। उसके और आपके अभाव में क्या हम लोग निराशावादी न बन जाते?

निराशावादी बन जाने के बाद आपकी ओर से भी अवश्य विमुख हो जाते। बस, दिन-रात आंसु बहा कर ही दिन-रात गँवाने पड़ते और शायद अभी तक इस संसार की इति श्री भी हो जाती।

प्रायः सभी प्राणी आदि से अन्तिम क्षण तक आपको चाहते ही रहते हैं।

मुख्यतः पहले बालपन में बड़े होने की, जवानी में ब्याह की और ब्याह के बाद सन्तान एवं धन, जन, मन, प्रभुता आदि की आशा लगी ही रहती है।

यहाँ तक कि मरणान्तक समय में भी, जबकि वैद्य, डाक्टर भी जवाब दे देते हैं; तब भी दो पैसे की दवा खाकर व्यक्ति स्वस्थ हो कर मकान बनाने, मुकदमा जीतने आदि की आशा लगाये ही रहता है।

यह तो सामान्य आशायें हुई; वैसे तो अनन्तानन्त आशायें हमारे जीवन में लगी हुई हैं।

हे शान्तिदायिने! आपका श्रेय सिर्फ सफलता की चहार दीवारी में बन्द नहीं; किन्तु असफलता में भी आप हमारी सहायता के लिये मैदान में कूद पड़ती हैं। वस्तुतः आप असफलता के दुःख को अपने कंधों पर लेकर मुझको ही क्या बहुतों को शान्ति प्रदान करती हो।

बड़े-बड़े विचित्र जालों में फँसे हुये प्राणियों की आप ही एक मात्र सहायिका हो। सैकड़ों कैदी आपके सहारे ही उंगलियों पर गिनगिनकर दिन काटा करते हैं। तथा वे सारी वियोगनी बालायें तुम्हारा आलम्बन पाकर ही प्रतीक्षा में घड़ियाँ बिता देती हैं। बताओ! आप न हो तो उनका क्या होगा?

हे त्रैलोक्यस्वामिनी! तुम ही बताओ कि तुम्हारे आधीन कौन नहीं? मैं ऐसा पागल थोड़े ही हूँ जो तुम्हें ठुकरा दूँगा। तुम्हारे आधार पर ही तो अनेक त्रैलोक्यपति हुये हैं तथा जब आप मेरी अनुगामिनी बन चुकी हो, तब मैं भी क्यों न त्रैलोक्यपति बन जाऊँगा?

जिसने आपको नहीं अपनाया, वह मुक्तिरमा भी नहीं पा सकता। प्रायः सभी सिद्ध, सिद्धत्व की अनेक भवों में आश लगाये रहे; तब कहीं जाकर अब अपना काम बना पाये।

यदि आपका प्रकोप दुनियाँ पर हो जाय तो प्रलय आने में देर नहीं और जब आप प्रलय कर सकती हो तो प्रलयंकर शंकर से कम क्यों?

एक क्षण पहले जो करोड़ों का मालिक था, वही एक क्षण बाद भिखारी बन गया; पर आपका सहारा जान मूछें तानकर कहता है कि पैसा तो हाथ का मैल है, मैंने ही तो कमाया था फिर हो जायेगा।

हे निर्माण कारिके! वस्तुतः आप ही प्राणी वर्ग को विनाश का दुःख भुलाकर निर्माण की ओर प्रेरित करती हो।

कई बुद्धू कहा करते हैं कि यहाँ क्या आश लगाये बैठे हो? आशा छोड़ो! पर वे आशाओं के आनन्द को क्या जानें? उन पर निराशा का भूत सवार है, पर मरने वालों को मरने दो।

हम पर रूठती क्यों हो? मैं तो आपका स्वागत ही करता हूँ।

आओ प्रिये! आओ प्रिये! तुम हृदय में हरदम रहो।

और शुभ आकांक्षा की भावना भरती रहो ॥१॥

चाहे प्रलय हो जगत में किन्तु तुम जिन्दा रहो।

जा रही हो कहाँ यदि कुछ दुःख हो मुझ से कहो ॥२॥

क्यों जा रही क्या इसलिये कि रक्खा तुम्हें है अन्त में।

पर एक हो तुम प्राणप्रिय! मुझ को अनन्तानन्त में ॥३॥

नारियों में ध्यान रक्खो अन्त में ही सार है।

नव वधु पर हे प्रिये! रहता सभी का प्यार है ॥४॥



यह हैं मेरी परम पूज्य मातायें

पहली – जन्मदात्री

हे जननी! तुम्हारे उपकारों को कौन मूढबुद्धि भूल सकता है?
तुमने हमारे वास्ते क्या क्या नहीं सहा? हमारे दुःखों में तुम कब
शामिल न हुईं?

माता! तुमने मरणान्तक पीड़ा होते हुये भी हमें न भुलाया। आप
सी क्षमता क्या किसी और में भी मिलेगी?

यदि आपमें जनन क्षमता न होती तो आप जननी कैसे कहलाती?

हे मात! आप सा हृदय किसने पाया?

मातृत्व नारियों के हाथ में ही रहा – यह उनके हृदय की शालीनता
का प्रमाण है।

पुरुष कभी मातृत्व न पा सकेगा; क्योंकि उसके वह हृदय ही नहीं,
जो कि माता बनने से पहिले चाहिये।

हे जननी! तुम ही कहो तुम्हारा सा स्नेह क्या किसी और को भी
मिला है? मेरी नजर में तो नहीं आता।

हे मात! यदि आपमें मातृस्नेह न होता तो माता कैसे कहलाती?
मातृहीन क्या जानें माता के दुलार को? क्या पहचाने उसकी पुकार को?

हे मातृहीनों! तुम मातृहीन क्यों हुये? क्या मैं भी एक दिन मातृहीन
हो जाऊँगा? मुझे डर लगता है, पर विश्वास नहीं कि हे मात! तुम मुझे
छोड़कर जा सकोगी। तुम ही बताओ – जबकि आज मेरी उदासी तुम्हें
दुःखित कर देती हैं तो तुम क्या मुझे छोड़कर चली जाओगी?

मुझे तो विश्वास है कि जब तक तुम मातृ हृदय से वंचित न होगी, तब तक मुझे न छोड़ सकोगी।

क्या मातायें भी निर्दया हो सकती हैं? नहीं, कदापि नहीं; आप लाख कहो; पर मैं नहीं मान सकता।

हे अम्बे! आप चिन्ता न करें, योगी ज्ञानियों की यह झूठी एवं रूखी बातें मुझे प्रभावित नहीं कर सकतीं। वस्तुतः उन्होंने मातृस्नेह को प्राप्त नहीं किया होगा; अतः इस तरह की अनर्गल बातें किया करते हैं।

कहते हैं कि कोई साथ न देगा, कोई तुम्हारा दुःख बंटा नहीं सकेगा। क्या माता तुमने हमारे हजारों दुःख नहीं बंटाये? तो इनके यह वचन झूठे क्यों नहीं है?

हे संसार को स्वार्थी कहने वालों! आँख खोलकर देखो तो निस्वार्थता भी मिलेगी, पर केवल माताओं में। अब कभी न कहना कि संसार स्वार्थी है। हे निस्वार्थमूर्ति माते! तुम को नमस्कार हो!

हे आदि गुरु! सर्वप्रथम आपने ही मुझे अविस्मरणीय ज्ञान दिया।

आपने मुझे सिखलाया – यह रोटी कहलाती है और यह पानी। तथा जीवन जीना जो आपने सिखलाया वह बराबर पूर्णतः आज तक याद है।

आपका पढ़ाने का तरीका ही विचित्र है। आप मीठी मीठी थपकियों के साथ पढ़ाती थी, मास्टर्स के समान डण्डा दिखाकर नहीं।

आप आदि गुरु ही क्यों, अन्त गुरु भी; क्योंकि आज तक भी तो आप कुछ न कुछ सीखाती ही रहती हो। तथा वह आपका कुछ न कुछ, बहुत कुछ का रूप धारण कर लेता है।

क्षमाशालिने! आप सरीखी सहनशीलता एवं क्षमाशीलता कहाँ मिलेगी? भूल से भाई, पिता आदि पर ही क्या किसी पर भी एक बूँद

पानी ही क्यों न गिर जाय तो फिर आप देखियेगा उनकी दृष्टि में वह अपराध अक्षम्य हो जाता है।

आपके ऊपर शौच कर देना, पैशाब कर देना, थूक देना कोई अपराध नहीं माना जाता। ऐसे दरबार में कौन रहना पसन्द नहीं करेगा?

विशाल हृदये! खोटे पुत्र को पिता घर से निकाल देता है, भाई दुत्कार देता है, पुत्र भी फटकार देता है, भाभी दुत्कार देती है, यहाँ तक तो ठीक ही है; पर पत्नी भी तो स्वार्थ में ही साथ देती है।

पर हे जननी! आप ही एक ऐसी विशाल हृदया हो; जो काने, अंधे, लूले, लंगड़े कैसा भी क्यों न हो; पर पुत्रों को पुचकार लेती हैं।

पर माँ! तुम यह न समझना कि तुमने हमारे हजारों उपकार किये; अतः मैं आपका कर्जदार हूँ; क्योंकि कर्ज तो दूसरे को दिया-लिया जाता है। अभिन्नता में कर्ज कैसा? पर मैं आपका सेवक अवश्य हूँ। पर आपकी क्या सेवा करें और कर भी क्या सकता हूँ?

बस, तुम्हारे पादपद्मों में मस्तक टेक कर ही कर्तव्य पूर्ण कर लेना चाहता हूँ। माँ! तुम नाराज तो न हो जाओगी? नहीं-नहीं, मैं भूल गया नाराज होना तो आपका स्वभाव ही नहीं, विशेषकर मेरे लिये।

हे जननी! हे जन्मदायिनी!! तुमको हो मेरा नमस्कार।
चाहे जितना अपराध करूँ पर नहीं करती हो तुम विचार ॥
पर एक बार से क्या होगा नत मस्तक हूँ मैं बार बार।
और नहीं है माता कुछ बस केवल सूखा नमस्कार ॥

(दोहा)

क्या सूखे नवकार से होगी नहीं प्रसन्न ॥

‘क्यों नहीं’ यह उत्तर मिला धन्य धन्य तुम धन्य ॥



दूसरी – सरस्वती

हे जगदम्बे! सरस्वती माते! क्या भूल जाओगी मुझ को?

“नहीं, नहीं बेटा” माँ से उत्तर मिला, और मैं खिल खिलाकर हंस पड़ा।

हे श्री जिनेन्द्र मुखोद्भूते! क्या आपकी महिमा वर्णन में आ सकती है? क्या पुत्र कभी माता के गुणों का वर्णन कर सका है? मुझे ही यह भार क्यों? नहीं, मैं गुण गुण कुछ नहीं जानता, बस भक्ति, भक्ति और भक्ति के सिवाय कुछ नहीं करना चाहता।

हे अम्बे! यदि कुछ कराना चाहती हो तो बलवान वीर पुत्र, मेरे अग्रज आचार्य जिनसेन, अकलंक और समन्तभद्र आदि से कहो। उनसे क्यों नहीं कहती? मुझ छोटे से बालक से अभी से काम करने को कहने लगी। मैं सोत का जाया थोड़े ही हूँ? जो मुझसे अभी से काम लेना चाहती हो।

माँ! नाराज न हो जाना। मैं तो बकता ही रहूँगा। तुमने मुझे बकवादी क्यों बना दिया? माँ! सुनलो ध्यान देकर यदि तुम नाराज हो गई तो मैं भी रूठ जाऊँगा और फिर तुम ही को मनाना पड़ेगा।

माँ! तुमने मेरी शादी तो लेखनी से कर दी, पर अब क्या वह निठल्ली ही बैठी रहेगी? कुछ काम उसे क्यों नहीं बताती? क्यों नहीं उससे कुछ लिखवातीं?

माँ! माफ करना। अभी अभी मैं कह गया था कि मुझे ही काम क्यों बताती हो और अभी अभी कहने लगा कि काम क्यों नहीं बताती हो?

यह तो बालकों का स्वभाव ही है। लो! अब मैं आपका उपदेशक भी बन गया। बालक स्वभाव का उपदेश देकर। यह सब आपका ही सिखाया है, आपने मुझे टूटा फूटा और गलत सलत क्यों पढ़ाया? अब तो मुझे जैसा आयेगा बकूंगा। जैसा किया, वैसा भुगतो!

माँ! माँ!! मैं फिर भूल गया, ऐसा भूलना क्यों पढ़ाया? अच्छा पढ़ाओ, अच्छा नहीं तो.....

ऐ! ऐ!! क्या कह गया मैं? माँ! माँ! क्या तुम सुन रही थीं? भूल जाओ! बिल्कुल भूल जाओ!! माँ भी कभी पक्षपात कर सकती है? कदापि नहीं। मेरी बुद्धि ही ऐसी खराब है कि मैं ऐसा ही पढ़ सका।

अस्तु। जो हुआ सो हुआ। आप तो मुझे अभी से बड़ी बड़ी बातें पढ़ाने लग गई। मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता।

पाठकों! मेरी माँ कितनी अच्छी है। जो कहता हूँ, वही पढ़ाती; जैसे कहता हूँ, वैसे ही पढ़ाती है। मारती भी नहीं, धमकाती भी नहीं; तड़पाती भी नहीं। क्या करना इन मास्टर्स का? सभी हमारी माँ के पास पढ़ने आ जाया करो।

अरे माँ! माँ!! माँ!! तुम कहाँ चलीं? मैं भी साथ चलूँगा। तुम मुझे छोड़कर भाग जाती हो, मुझे तो अकेले में यहाँ पर डर लगता है। तुम्हारे बिना मेरा हृदय शून्य हो जाता है। दिमाग बेकार एवं बैचेन हो जाता है। मुझे अकेले न छोड़ा करे, नहीं तो पिताजी से कह दूँगा।

अच्छा-अच्छा नहीं कहूँगा, नाराज क्यों होती हो? पर तुम बताओ मुझे साथ क्यों नहीं ले जाती? मैं तुम्हें वहाँ परेशान न करूँगा। अच्छा अब तो न करोगी ऐसा।

मेरी माता तू कितनी अच्छी है। तेरी प्रशंसा कहाँ तक करूँ? क्या

खा के करूँ? तू ने पढ़ाया-लिखाया तो कुछ है नहीं। स्तुति करना आता ही नहीं तो क्या करूँ? मुझे यह तो पसन्द नहीं कि दूसरों की बनाई हुई स्तुतियों को तोता सरीखी राम, राम रटा करूँ।

हाँ, एक बात और है। चाहे पढ़ाओ या चाहे मत पढ़ाओ, पर डण्डा तो नहीं खाऊँगा।

तू कहे तो रोटी खा लूँगा, रबड़ी खा लूँगा, पेड़ा खा लूँगा; मीठी मीठी चीजें सब खा लूँगा। माँ! क्या मीठी चीजें खाने से विद्या नहीं आती?

हे! हे!! तू झूठ बोलती है। डण्डा के बदले मैं लेमनचूस खा लूँगा, वह तो डण्डा जैसी ही होती है। विद्या समझेगी कि डण्डा ही खाया है और आ जायेगी। अब तो ठीक है। पगला! पगला!! क्या कहती है, पगला हूँ तो तेरा और होशियार हूँ तो तेरा

अच्छा तो सुन हे जननी! तू मुझे छोड़ नहीं जाना।

नहिं तो शिकायत कर दूँगा बस इतना सुनते जाना ॥१॥

सद्ज्ञान बारि से मुझको मल मल कर खूब नहाना।

धर्म स्नेह लगाकर व्रत वस्त्र शुभ्र पहनाना ॥२॥

जिससे तेरी यह साड़ी गन्दी न हो पावेगी।

बस तेरी सद्बुद्धि से मुझ में सुबुद्धि आयेगी ॥३॥



तीसरी – पृथ्वी

हे मातृ भूमि! मैं तुम से भिन्न नहीं। तुम्हारी ही मिट्टी से बना हूँ और अन्त में उसी में मिल भी जाऊँगा। तुम्हारी इस अनन्त गोद में हम अनन्तों भाई-बहिन स्वच्छन्दता से खेल रहे हैं। तुम्हारे अन्तस्थल में अनन्त अन्न भण्डार भरा पड़ा है। उसी को निकाल-निकाल कर हम लोग आनन्द उड़ा रहे हैं।

तुम्हारी छाती को खोद-खोद कर हम तुम्हारा स्नेह (तेल) जब निकालते हैं और उसका उपयोग कर हम प्रसन्न हो, न मालूम क्या-क्या हो जाते हैं और तेरी छाती पर कूँद-कूँद कर उसे रूँधते हैं; पर क्या तूने कभी भी कुछ कहा?

हे माता! धन्य है तुझे! और तेरे हृदय को! और धन्य है तेरी उस क्षमता को!

हे जगदम्बे! तुम सारे देश ही क्या सारे विश्व की जननी हो; अन्यथा तुम्हें जगदम्बे क्यों कहा जाता? आपका सभी पुत्रों पर बराबर स्नेह है। सरस्वती आदि सरीखा नहीं कि आचार्य अकलंक आदि को तो विद्वान बना दिया और हमें बुद्धू। नहीं, नहीं, भूल गया; मैं भूल गया माता! वो भी बिचारी क्या करें? जब हम में दिमाग ही नहीं, प्रतिभा भी नहीं। यह तो हमारा भ्रम या भूल थी। माता कभी पक्षपात नहीं कर सकती।

हे वसुधे, वसुन्धरे! तू ही हमेशा हमारा लालन-पालन करती है एवं अन्न-जल-दुग्ध के रूप में सुधापान कराके जिन्दा रखती है। जीवनदान देती है।

माँ! पुत्र को दान कैसा? नहीं, नहीं; मैंने ही तो दान की बात की, माँ ने तो कुछ नहीं कहा, उस पर आक्षेप कैसे?

यदि तू सुधापान न कराती तो वसुधा क्यों कहलाती? वसुन्धरा नाम क्यों नाम धराती?

माँ! तेरे सामने मुझे संसार की सारी निधियाँ तुच्छ प्रतीत होती हैं। तेरे पीछे हाडा बंशीवीर नकली बूँदी का भी अपमान न सह सके। महाराणा प्रताप चित्तौड़ को पराधीन न देख सके। आखिर वो हमारे ही तो पूर्वज थे, हम उन्हीं की तो सन्तान हैं। हम क्यों न इतनी हिम्मत रखें?

हे अम्बे! हे वीर प्रसूते!! आपके सामने सभी देवियाँ तुच्छ हैं, न के बराबर हैं। आप ही ने तो भगवान महावीर, बुद्ध, महापुरुष राम, कृष्ण, ईशा, पैगम्बर, शिवशंकर, प्रताप, गाँधी सरीखे पुत्र पैदा किये तथा आपने ही सती सीता, द्रोपदी, अंजना, मनोरमा, लक्ष्मी, जैसी पुत्रियाँ पैदा की। क्यों न आपको वीरप्रसूते कहा जाय?

तेरे ऊपर बहती हुई नदियाँ ऐसी मालूम पड़ती हैं कि वस्तुतः तेरी स्नेह धारा ही न बह रही हो अथवा वीर पुत्रों के वियोग के दुःख में हे माता क्या तू अश्रुधारा बहा रही है? सच बता, क्या मेरा अनुमान सच है?

सफल वृक्ष खड़े-खड़े ऐसे मालूम पड़ते हैं कि माता बच्चों को नाश्ता लिये ही क्यों न खड़ी हो? हे जननी! आपका स्नेह सफल है। यही बताने को तो ये वृक्ष फल सहित खड़े हैं।

ये पर्वतों की चोटियाँ! क्यों इतनी ऊँची उठ गई हैं? हाँ, हाँ, समझ गया। यह आपकी कीर्ति पताका फहराने आकाश पर चढ़ी जा रही हैं।

हे माता! तुम्हारा प्रत्युपकार तो हम क्या करें? हमारा यह भाग्य भी नहीं कि तुम्हें अपने शीश पर ही चढ़ा सके। अतः मस्तक झुकाने के सिवाय कोई चारा भी नहीं, क्या करें? आप ही बताओ! नाराज क्यों होती हो? कुछ शब्दावली तुम भी लेती जाओ।

भव्य मूर्ति भारत अम्बे! हमको भुला देना न तुम।
 हम को दो वरदान यही कि भूल न जायें तुमको हम ॥१॥
 जो किया उपकार तुमने कहा जा सकता नहीं।
 पालन किया ओ कर रही हो अधिक कुछ कहना नहीं ॥२॥
 और तो कुछ नहीं मेरे पास यह बस शीश है।
 बस आपके ये प्राण हैं ओ आपका आशीश है ॥३॥
 आशीश देने का मुझे हे जननि! कुछ भी नहीं अधिकार है।
 शीश अर ये प्राण देने का मुझे इकरार है ॥४॥
 वह भी जभी दे सकूंगा जब चाँन्स मेरा आयेगा।
 जब समय आकर स्वयं मेरी वीरता अजमायेगा ॥५॥
 इस समय तो जननि अम्बे! मैं झुकाता शीस बस।
 चाहता हूँ 'मातृभक्ति' एक यह आशीश बस ॥६॥



चौथी – लक्ष्मी

प्रिय पाठक वृन्द! यह भी हमारी माता ही है, पर सोतेली। इसकी सरस्वती माँ से सदा अनबन रहती है। तथा मुझको सरस्वती माँ प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखती है, अतः इस माताजी की मुझ पर प्रायः अकृपा ही बनी रहती है; पर मैं क्या करूँ?

यह मेरा कसूर तो है नहीं कि मुझे सरस्वती माँ प्रेम करती हैं और जब वे प्रेम दिखाती हैं तो मुझे भी उनकी विनय करनी ही पड़ती है, उनका थोड़ा बहुत काम भी करना ही पड़ता है।

और यहाँ इसने मुझे उनकी विनय अथवा काम करते देखा कि इसका पारा गरम हो जाता है। क्या करूँ मैं? इसकी भी कहीं उनसे अधिक सेवा करता हूँ। समय भी इसकी सेवा में काफी देता हूँ। भक्ति एवं विनय भी यथाशक्य करता ही हूँ; पर यह चाहती है कि सरस्वती माँ का मैं मुँह भी न देखूँ।

बताओ! यह कैसे हो सकता है? पर अब इसकी अकृपा मुझे बहुत चिन्तित एवं व्याकुल करती रहती है, शायद अब मुझे सरस्वती माँ से सम्बन्ध तोड़ना ही पड़ेगा।

एक बात तो जरूर है कि सरस्वती माता मनुष्य को महात्मा, साधु, सज्जन बना देती है; पर संसार में अपने सेवक को सुखी बनाना उसके हाथ की बात नहीं है।

जिस पर लक्ष्मी-माँ की कृपा हो गई, समझ लो चारों तरफ चाँदी ही चाँदी है। न शारीरिक मेहनत करना पड़े, न मानसिक। बस मस्त पड़े रहिये। अनेकों नोकर काम काज करते रहते हैं।

वस्तुतः इसके यहाँ कर्मचारी बहुत हैं। कामकाज लम्बा चौड़ा है। इसके आते ही सब में परिवर्तन होने लगते हैं। रहन-सहन में, खान-

पान में, आदान-प्रदान में, लेन-देन में, यहाँ तक कि उठने-बैठने में भी काफी परिवर्तन हो जाते हैं।

यहाँ तक तो ठीक भी है, पर नाम भी तो बदल जाता है। दमरु से दामोदरदासजी कहलाने लगते हैं। इतना ही नहीं; आगे पीछे दानवीर, धर्मवीर आदि न जाने क्या क्या जुड़ जाता है।

इसके कृपापात्र को धन-धन-धन एवं धन्य-धन्य-धन्य के सिवाय कुछ नहीं दिखता। इसका परिवर्तन यहीं समाप्त नहीं हो जाता।

यदि यहीं समाप्त हो जाता; तो कहीं अच्छा भी था, पर आप तो परिवर्तन किये ही जाती हैं। मानव का दानव, इन्सान का हैवान के रूप में भी परिवर्तन कर देती हैं। योगी को भोगी बना देती हैं।

शराबी, व्यसनी, लोभी, लोलुपी आदि न मालूम क्या-क्या बना देती हैं।

यह परिवर्तन तो बाहरी और मानसिक हुये; पर शारीरिक परिवर्तन भी होने लगता है, सीने की जगह पेट बढ़ने लगता है। इन्द्रियाँ शिथिल पड़ने लगती हैं।

हे अम्बे! क्या तुम यह सब सुन रही थीं? मैंने आपकी बुराई तो नहीं की ना? क्या कभी मुझ पर भी कृपा करोगी?

इसमें मेरा अपराध तो है नहीं कि मैं आपकी सौत से क्यों पैदा हुआ? आप ही बताओ यह मेरे हाथ में तो था नहीं, फिर आप मुझ से क्यों नाराज रहती हो?

तथा मैं अधिकतर आपकी सेवा में ही तो उपस्थित रहता हूँ। तुम कहती हो कि सरस्वती माँ को छोड़ ही दो। बताओ! मैं अपनी सगी माता का न होऊँगा तो तुम भी विश्वास कैसे करोगी? सोचोगी कि जो अपनी सगी माँ का न हुआ, वह मेरा कैसे होगा?

हे माता! आपके बिना आपका यह बालक कितना दुःख पा रहा है; पर आप तो पसीजती ही नहीं। क्या आपके मातृहृदय नहीं है? मत तरसाओ! माँ! मत तरसाओ!!

आप से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अपनी माँ सरस्वती से मत छुड़ाओ।

आपका साम्राज्य है, वह आपकी दासी बनकर ही रह जावेगी, क्या आपको यह भी स्वीकार नहीं?

क्या मेरे यह टूटे फूटे शब्द, आपको प्रसन्न न कर सकेंगे? इससे सरस्वती माँ ही अच्छी, जो कुछ भी थोड़ा बहुत लिख दिया कि प्रसन्न हो जाती है।

माँ! मुझ पर कृपा करो! कृपा करो! हाँ; पर एक बात और कह देना चाहता हूँ कि आप चाहे कृपा करो, चाहे नहीं; चाहे मुझे अपनाओ, चाहे नहीं। चाहे मेरे यहाँ आओ या नहीं; पर जब आओ, तब अभिमान और अवगुण साथ में न लाना।

अच्छा तो कुछ भेंट भी लेती जाओ -

कर दे कृपा हे जननि! अम्बे! मैं भी तुम्हारा बाल हूँ।
 रुष्ट शायद इसलिये हो क्योंकि मैं वाचाल हूँ ॥१॥
 किन्तु मैं वाचाल अथवा जो भी हूँ सो आपका।
 आपके बिन मुझे डर है जगत के संताप का ॥२॥
 संसार में हे अम्बे! तेरे नाम का खाते सभी।
 बात भी नहीं पूँछता है तुझ बिना कोई कभी ॥३॥
 संसार में सन्मान होता रहा प्रायः आपका।
 किन्तु भक्तों का अरे! भर जायेगा घट पाप का ॥४॥
 अतएव माता! अन्त में है प्रार्थना तुझ से यही।
 दूर से ही कृपा करना चाह मेरी एक ही ॥५॥
 मुझ पर करोगी कृपा ऐसी आश बस मैं कर रहा।
 ध्यान रखना हे जननी! यह प्रार्थना मेरी अहा ॥६॥



मेरा साम्राज्य

मैं बालकपन से ही सुना करता था कि प्रत्येक मनुष्य दो दिन के लिए राजा बन जाता है तथा उस दिन का इंतजार भी किया करता कि कब मुझे राज्य मिले और कब मैं राजा कहलाऊँ?

मैंने बचपन में दीदी और मम्मी के द्वारा राजाओं एवं राजकुमारों की बहुत सी कहानियाँ सुनी थी।

कोई राजकुमार आकाशगामी घोड़े पर सवार होकर घूमता तो कोई नौकरों पर आर्डर चलाता। मेरे मुँह में पानी भर आता। काश! मैं भी राजा होता। पर उसी वक्त ध्यान आया कि मुझे भी तो दो दिन राज्य मिलेगा। ध्यान भी मोका देखता है, बिना मोके तो वह भी नहीं आता।

हाँ, तो मुझे राज्य मिलेगा; मैं भी आकाश में खूब घोड़ा दौड़ाऊँगा, नौकरों से बोरो (बेरो) मंगवाऊँगा। और तो चाहिए ही क्या था?

पड़ोसवालों को बोरो खाते देखता और मुझे भी खाने की इच्छा होती थी। काटों से हाथ छिदाने पड़ते थे; अतः सोचता था कि हाथ न छिदाने पड़ेंगे।

मैं कल्पना लोक के अपने साम्राज्य में विचरण करने लगता; पर मुझे कल्पना कल्पना ही मालूम पड़ती तो मेरा मानस उस दिन को प्राप्त करने के लिये छटपटाने लगता है।

पर हाय! उन दिनों में तो मैं छटपटाता ही रहा, पर मुझे राज्य नहीं मिल पाया; किन्तु १५ फरवरी को महावीर इन्टर कालेज में मेरे नाम पत्र पहुँचा कि तुम शीघ्र चले आओ। ५ मार्च की तुम्हारी शादी है।

मैं सहम गया और सोचने लगा कि क्या मैं परीक्षा न दे सकूँगा, मेरा हृदय विद्रोह कर उठा और एक पत्र लिख दिया कि ८ मार्च से मेरी परीक्षाएँ हैं, मैं नहीं आ सकता।

फिर क्या था? दूसरे दिन ही पिताजी सामने खड़े थे तथा उनके मुखारबिन्द से अनेक अपशब्द रूपी पुष्पों की वर्षा मेरे ऊपर हो रही थी।

“क्या इसलिए पढ़ाया था? अब तो यह हमको कुछ गिनता ही नहीं। इसे क्या अधिकार कि हमें ऐसा पत्र लिखे?”

जो-जो शब्द उनके भाषण में आये, मैं नीची गर्दन किये सब कुछ सुनता रहा एवं सोचता रहा कि मैंने इन्हें कौन सी गाली लिख दी थी?

यही तो लिखा था कि मेरी परीक्षाएँ हैं। अतः मैं नहीं आ सकता।

पिताजी का भाषण चालू था।

“उठो, बाँधों विस्तर, हमें नहीं पढ़ाना।”

मेरे मन में विद्रोह की भावनाएँ चक्कर काटने लगी और सोचा कि एक बार तो इन्हें अच्छी तरह फटकार दूँ। पर हिम्मत न हुई।

यहाँ तो जमीन पैरों के नीचे से खिसकी जा रही थी।

जो कुछ मन में आया उसे खून के घूट की तरह पी गया और लगा विस्तर बाँधने। ठीक उसी समय सुरेश आकर बोला -

“अब तो दूल्हे राजा बनने जा रहे हो।”

उसकी बात सुनते ही मुझे दो दिन की राजा बनने की बात याद आ गई। मैं सोचने लगा -

“अब, मुझे साम्राज्य मिलने वाला है। उसका यह प्रारंभिक मंगलाचरण है। लगता है मुझे यह साम्राज्य बहुत महँगा पड़ेगा।”

हुआ भी ऐसा ही। ब्याह के बाद मेरा और पढ़ाई का सम्बन्ध बिल्कुल विच्छेद हो गया। शायद नयी नवेली सोत को देखकर उसने तलाक ही दे दिया था।

हाँ, तो फिर क्या हुआ? घर आते ही एक नाई को बुलाया गया,

जिसके हाथ में एक थैली थी; जिसमें न तो मशीन ही हो सकती थी और न कैची। बस एक उस्तरा था।

मैंने कहा - “इसे क्यों बुलाया?” उत्तर मिला “तुम्हारे बाल बनेंगे।”

मेरा दिमाग चक्कर खाने लगा। मैंने कहा - “क्यों तुम्हारे पास मशीन नहीं है?” तुम बाल बनाना जानते हो? तो वह खिल-खिला कर हँस पड़ा और हँसता ही रहा। फिर बोला -

“मैं बाल बनाना नहीं जानता तो गाँव भर के लोगों के बाल कौन बनाता है?”

मैंने कहा “मुझे इन लोगों सरीखे घुटाना नहीं है।”

पिताजी की आँख उठी और वे कहने लगे -

“नहीं, बैठो, बनवाओ, बालों पर पगड़ी अच्छी नहीं लगती।”

मेरे चेहरे का रंग उड़ गया; पर मुझ में वह साहस न था जो कुछ भी कह सकता।

मैं बैठा और उसने अपना काम प्रारंभ किया। मेरे मुख मण्डल को सुशोभित करने वाली लटों को जमीन पर गिरता देख मेरा मानस पिघल गया और मेरी आँखों से दो बूँदे नाई के पैरों पर गिर पड़ीं।

मेरी हैसियत उस समय उतनी भी नहीं थी, जितनी कि ऊन उतारते समय भेड़ों की रहती है; क्योंकि वे चीखकर विरोध प्रदर्शन तो कर सकती हैं। चाहे सुनवाई हो या नहीं, पर मेरे हाथ तो वह भी न था।

शिर मुण्डन के बाद मेरे शिर पर हल्दी लपेट दी गई। भेड़ों को तो मूढ़ने के पहले नहाया जाता है, पर मेरा उल्टा हुआ। अस्तु! इतना ही होता तो कोई बात न थी; पर अभी छुटकारा कहाँ मिला था?

सौ हाथ लम्बी पगड़ी से मेरा शिर जकड़ दिया गया, मेरे इन्कारों को वहाँ कौन सुनता? मैंने तो कभी शिर पर टोपी भी न रखी थी, अतः मेरा शिर चकराने लगा। पर करता क्या? राजा जो बना था, अब तो राजत्व निभाना ही होगा।

पर होता क्या है कि एकदम मेरे शिर में खुजली पैदा हो जाती है और मैं धीरे से शिर खुजाने को पगड़ी उतारता हूँ तो चारों तरफ से फटकार भरी आवाजें आती हैं – जैसे मैंने कोई चोरी अथवा जारी की हो। मैं सोचता – अच्छा राजा बना, जिसे जो चाहे दुतकारे।

अब मेरी बरात निकलने का समय आया तथा मुझे एक ऐसा कोट पहनाया गया जो न तो अचकन ही में था और न कोट में। पर वह रेशमी अवश्य था।

जाड़ों में बैलों के ऊपर जैसी झूल डाल दी जाती है, बस वैसा ही था। वह भी मुझे बिना आनाकानी किये पहनना पड़ा। रिवाजानुसार पूर्ण सजा करके मेरी इच्छा के बिना घोड़ी पर बिठाया गया।

वैसे तो मैं घोड़ी दौड़ाने का शौकीन हूँ तथा कभी कभी दोड़ाया भी करता। जब कोई व्यक्ति मेरी तरफ देखता था तो मेरा मस्तक मारे अभिमान के ऊँचा हो जाता था; पर आज तो उन्होंने मुझे लगाम भी न छूने दी थी। लगाम पकड़ने वाला घोड़ी वाला था।

मेरे हाथ में कुछ भी न था। घोड़ी पर एक पड़ौसी के लड़के को मेरे आगे बिठा दिया गया था। मैं उदास था और जोर-जोर से बाजे बज रहे थे। ख़ूब नाच कूद हो रही थी।

पर मेरे लिये कहीं चारा न था। यदि हँसता तो धीट कहलाता, बिल्कुल लाज नहीं। सभी मुझ से मजाक करें, पर मेरा चुप रहना अनिवार्य था। जबान पर ताला लगाये रहो। कोई कुछ भी कहे, सब सुनते रहो – यही मेरे साम्राज्य की प्रथम स्वायतत्ता थी।

ज्यों ज्यों समय नजदीक आता गया; त्यों त्यों मेरे बन्धन बढ़ते ही गये। यहाँ तक कि मेरा कुर्ये पर जाना, हँसना, खेलना, रोना सब कुछ गुनाह हो गया।

पड़ोस में जाकर भी मैंने चैन न पाया। जहाँ जाता, वहीं दूल्हा राजा, दूल्हा राजा आदि व्यंग बाणों का शिकार होना पड़ता।

बकरे की माँ कब तक कुशल मनायेगी? अब मेरा सारा वदन हल्दी से लपेट दिया गया। मुझे संशय होने लगा कहीं मुझे पीला करके रंगरेज के यहाँ रंगे स्यार के समान राजा तो नहीं बनाया जा रहा है?

माहुर मेहंदी लगाकर पूरी औरत बना दिया गया। गले में पाँव भर का वजन सोने की साकलों के रूप में डाल दिया गया, जिस तरह उजार (उजाड़) करने वाले पशु के गले में डंडा बाँध दिया जाता है।

मेरी समझ में न आया कि बिना अपराध मेरी यह हालत क्यों की गई; पर करता क्या?

बंधनों की भी हद होती है, यहाँ तक कि पेशाब करना, शौच जाना, खाना पीना आदि दैनिक एवं आवश्यक क्रियायें भी बिना आदेश के करना जुर्म समझी जाती थी। मैं अपनी इच्छानुसार पहिन ओढ़ भी न सकता था।

खटाई न खायेगा। सभी खूब मिठाइयाँ, खटाइयाँ, नमकीन, मिर्चीवाले सभी पदार्थ खायेंगे, पर दूल्हा राजा पर प्रतिबंध।

बारात गई और पाणिग्रहण का समय भी आ गया, हमें सात प्रतिज्ञायें दिलाई गईं। जिन्हें पंडितजी बोलते जाते और हम दुहराते जाते।

एक प्रतिज्ञा ऐसी भी थी जिसे मैं न निभा सकता था; अतः मैंने साफ-साफ इन्कार कर दिया। फिर क्या था? पिताजी, मामाजी, काकाजी, पंच महोदय एवं पण्डितजी की आँखों ने मेरे ऊपर एकदम एक साथ

आकस्मिक आक्रमण किया। आखिरकार मुझे वह प्रतिज्ञा भी दुहरानी पड़ी।

अन्ततोगत्वा अब साम्राज्य का अन्त आने को था; पर वह अन्त तो आदि और मध्य से भी गजब निकला।

मैं घर आया तो हम दोनों को एक गाँठ से बाँध दिया गया। फिर लोगों के चरणों पर माथा टेकते-टेकते और पैर छूते-छूते थक गया; पर आराध्य देवताओं का अन्त न आया।

आखिर में हमें एक कमरे में बन्द कर दिया गया। उस धीमे-धीमे प्रकाशवाले बन्द कमरे में जब पत्नी ने अत्यन्त मृदुल स्नेहभरे शब्दों में सम्बोधित किया। “प्राणनाथ!” कहा “मेरे राजा!” कहा तो लगा कि यह है मेरा साम्राज्य और मैं इस साम्राज्य का राजा हूँ। मेरी पत्नी मेरी प्रजा नहीं, गुलाम नहीं; रानी है, दिल की रानी है, महारानी हैं।

मैं उठा और एक कदम आगे बढ़कर उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। बाहुपास में बाँध लिया। हम दोनों उस समय एक थे। हमारा साम्राज्य अचल था।

जब प्रातःकाल उठकर कमरे से बाहर आया तो छोटी बहिन ने कहा - “दूल्हा राजा” तो मेरी बाँछें खिल गईं।

जब ऊपर से एकदम आवाज आई कि अब राजा बाजा कुछ नहीं, चलो काम करो।

ये शब्द मेरे मानस में तीर से चुभ गये। तथा एकदम मुख से निकल गया कि कैसे नहीं राजा? हम राजा हैं और उसी समय मुझे अपना वह साम्राज्य याद आया, मेरी आँखें बन्द हो गईं; तथा वह रात वाला चित्र मेरी आँखों के सामने घूमने लगा।

हृदय बोल उठा कि तू अब भी महाराजा है। तेरा साम्राज्य छिपा है घूँघट की ओट में, जरा खोलके तो देख। ●

अभिमान

(१)

जगतूमलजी नये धनिक थे, उनकी बैठक में तीन दरवाजे थे। छप्पर को बनाये चार पाँच साल हो गये थे, दो-तीन वर्ष हुये जब आपने बैठक में किवाड़ भी लगवा दिये थे।

गर्मियों के दिनों में आप बैठक में पलंग डालकर बैठते और शाम को एक दरी बिछाकर सामने वाले चबूतरे पर आ लेटते। अभी-अभी करोड़ीमलजी के मर जाने से आप गाँव के प्रमुख धनी माने जाने लगे थे। वैसे तो आपको अपने भूतपूर्व जीवन में कई दिन बिना खाये-पिये तथा रातें करवट बदल-बदलकर बितानी पड़ती थीं।

आपकी उम्र अभी करीब ५० के लगभग होगी; मोटापन आ गया था, तोंद बड़ चली थी; जो पहले काले-कलूटे कहलाते थे, वे अब सांवले कहलाने लगे थे।

चबूतरे पर आपके बैठ जाने से आसपास के लोग भी आ बैठते। मेरा घर भी वहीं पास ही था। जब मैं घर रहता तो मैं भी वहीं जा बैठता।

बैठे हुये मनुष्यों पर रोब जमाने के लिये जगतूमलजी कहने लगते-

“भगवानदीन क्या कंगाल हो गये हैं, लड़के की शादी में दो सौ रुपया ले गये थे, तीन वर्ष होने को आये, अभी तक न चुका पाये।

अमरपुर वाले गिरधारीलाल बड़े धन्ना सेठ कहलाते हैं। कहते हैं कि उनके यहाँ पच्चीस वर्ष पुराने चावल तो वैसे ही पड़े रहते हैं; पर इस वर्ष मैंने दो सेर पुराने चावल मंगाये तो गाँव में तलाशने लगे।

उस मलुआ को तो देखो जो भूखे मरता था, सो मैंने पाला, अब मुँह भी नहीं दिखाता, मैं चाहूँ तो साले को जेल भिजवा दूँ, पर सोचता हूँ १५०) रुपट्टी के पीछे ऐसा क्यों करूँ?

वे अहमदनगर वाले बड़े वीजवाले कहलाते हैं। कहते हैं उनके यहाँ जागीरदार वीज लेने आते हैं। उस दिन ५००) ले गये थे और कह गये थे कि १५ दिन में भेज देंगे, आज तक मुँह न दिखाया।”

उनकी इस तरह की बातें सुनकर मुझे तो हंसी आ जाती, पर रोककर रह जाता। पास बैठे हुये कुछ लोग तम्माखू का दम चढ़ाते हुए कहने लगते कि “हाँ, हाँ इस असफेर (आस-पास के एरिये) में आपकी बराबरी कौन कर सकता है?” ठीक ही है, तम्माखू जो सेठजी की पी रहे थे। बजानी भी तो पड़ेगी उन्हीं की। उनका कहना समाप्त न हो पाता कि एक चमचा बीच में ही बोल उठता -

“ऐजी आपकी का कने अबे किशोरी भइया ने कई के ज्वार में दो हजार का घाटा है तो आप हँसने लगे, और कह दिया - चिन्ता न करो तुम्हारी तीन पीड़ियाँ बैठी बैठी खॉय तो भी.....।”

उसने अपनी बात पूरी न कर पाई, रामधन पाण्डे बोल उठे -

“देखो तो दो हजार पर भी फिकर न थी”

यह सुनते ही जगतूमलजी की बाँछें खिल गई और बड़े अभिमान से ऊँचा मस्तक उठाते हुये बोले - “मैं दो हजार की चिन्ता करूँ, यहाँ दस हजार पर भी रोम नहीं मटकता।” यह कहते हुये खिल खिलाकर हंस देते हैं और चारों तरफ से वाह वाह होने लगती।

यह एक दिन का काम न था।

(२)

जगतूमलजी के ज्येष्ठ पुत्र का नाम किशोरीलाल था। वह भी पिताजी के रंग में रंग गया था।

एक दिन मुझे सौभाग्य मिला कि मैं और वह दोनों एक साथ घूमने

चल दिये, रास्ते में तरह-तरह की वार्तालाप होने के पश्चात् मैं अचानक पूछ ही बैठा “बिहारीलाल की शादी कब करोगे?”

मेरा इतना कहना था कि उसका व्याख्यान प्रारंभ हो गया। और वह कहने लगा है कि -

“हिम्मतनगर वाले आये थे तो हमने तो साफ साफ कह दिया कि ध्यान से सुन लो - मकान हमारा है यह है, जो चाहे महल हो चाहे झोपड़ी। लड़का बिल्कुल काला है तथा आपकी लड़की नाइन्थ पास है तो वह भी तो सेविन्थ में पढ़ता है, पर ध्यान रहे कि उसने प्रत्येक क्लास दो-दो वर्ष में खूब पक्की करके पास की है। आपकी मर्जी हो तो करो न हो तो कोई बात नहीं। इन्दौर वाले तीस तोला देते थे, पर हमने तो कह दिया कि लड़का अभी पढ़ता है।”

वह धाराप्रवाह बोले जा रहा था तथा मैं कान लगाकर सुने जा रहा था। उसने फिर एक बार दुहराया “जबरदस्ती तो है नहीं, आपकी मर्जी हो तो करो नहीं तो नहीं। पर हमारी इज्जत रखनी पड़ेगी।”

इज्जत शब्द सुनते ही मैं चक्कर में पड़ गया। इज्जत, इज्जत, इज्जत का क्या मतलब, जमाई की इज्जत कौन बिगाड़ेगा। मैं असमंजस में पड़ गया; कि मैं अच्छे अच्छे प्रोफेसरो के भाषण तो सुगमता से समझ लेता हूँ, पर यह नहीं समझ पा रहा। सोचा कि घर जाकर डिक्शनरी में देखूँगा “इज्जत” शब्द का कोई दूसरा अर्थ तो नहीं होता।

मेरी व्याकुलता बढ़ती ही गई और मैं उस समय तक अपने को न रोक सका। तथा कह बैठा कि “इज्जत” का क्या मतलब? वो आपकी इज्जत क्यों बिगाड़ेंगे, जमाई की इज्जत कौन बिगाड़ता है?”

मेरा इतना कहना था कि वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला-
“यही पढ़ते हो? जो मेरे कहने का मतलब भी न समझे।”

मैं अचंभित होकर रह गया। मेरी उस समय वो हालत थी जो कि एक छात्र की मास्टर के सामने जवाब न दे पाने पर हो जाती है। पर मैं

इज्जत न बिगड़ने का अर्थ समझने के लिए व्याकुल हो रहा था। वह हँसते हुये ही कहता गया - “यानि हमने ४० तोला सोना माँगा था।”

मैं अब समझ पाया था, इज्जत बिगड़ने का अर्थ तथा आप भी समझ गये होंगे।

(३)

बिहारीलाल, किशोरीलाल का छोटा भाई था। मैं चिन्तित रहने लगा कि अब तो अभिमान मेरे पड़ौस में आ गया है; पर उनके वे प्रशंसात्मक वाक्य उनके हितैषी नहीं घातक ही सिद्ध हुये। लोगों पर उनकी धनाढ्यता का असर बराबर पड़ता गया।

जेठ का माह था। गर्मी खूब पड़ रही थी। आज मैं आठ बजे ही सो गया था; क्योंकि दिन में न सो पाया था। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्दजी का उपन्यास हाथ लग गया था। वैसे ही मैं उपन्यास पढ़ने का बड़ा शौकीन हूँ। फिर प्रेमचन्द का उपन्यास, जो कि खाना पीना भी भुला देता है।

बारह बजे होंगे, कराहने की आवाज आ रही थी। काम हो चुका था, मैं उठा और बाहर आया तो मालूम हुआ कोई रो रहा है। जरा आगे बढ़ा तो क्या देखता हूँ कि बिहारी सामने रो रहा है। मैंने चकित स्वर में पूछा क्या हुआ? पर वह कुछ न बोला। मैं आगे बढ़ा तो देखता हूँ कि वहाँ बहुत लोग इकट्ठे हैं और जगतूमलजी सकुटुम्ब रो रहे हैं।

बिना किसी के कुछ कहे मेरी समझ में सब कुछ आ गया, आप भी समझ गये होंगे। उन लोगों की रुदन क्रिया का वर्णन कर मैं आप लोगों का दिल नहीं दुःखाना चाहता हूँ; क्योंकि आप जानते ही हैं कि जो एक पैसे के लिए व्याकुल हो जाये, उसका सर्वनाश हो जाय तो क्या कहना।

उस दिन से उनके मुख से इस तरह की बातें मैंने कभी न सुनी।

मैं निश्चित हो गया; क्योंकि अभिमान तो मुझ से कोसों दूर भाग गया था।



उद्धार

(१)

सेठ सरदारमलजी निरक्षर भट्टाचार्य होते हुये भी धर्मसंरक्षणी सभा के संरक्षक, साहित्य विद्यापीठ के सभापति एवं महिलाश्रम के संस्थापक थे। बस इतना ही नहीं भारतवर्षीय महासभा के उपाध्यक्ष पद पर भी विराजमान थे। यह सब उनके आराध्य देव धनराज सुवर्णसिद्धि के वरदान का ही फल था।

उनके अनेक मिल कम्पनियाँ एवं प्रिन्टिंग प्रेस थे; अतः अपनी प्रतिष्ठा एवं विज्ञापनादि हेतु एक पाक्षिक पत्र भी निकालते थे। निरक्षर हुये तो क्या, उनके राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं के सुलझाने हेतु अनेक लेख मय ब्लाक के हरदम निकलते ही रहते थे। इतना ही नहीं, जितने पत्रों में उनकी श्रद्धा थी; सभी को कुछ न कुछ सहायता देकर अपने हाथों में किये हुये थे।

यदि उनके मिलों में हजारों गज मलमल निकलती है तो क्या हुआ? आप तो कांग्रेस में है, खादी पहनते हैं।

आपका चौतरफा साम्राज्य, आपकी विशाल बुद्धि का ही परिणाम था। जब आप विशाल काय व्यक्ति है तो विशाल बुद्धि भी क्यों न हो?

गरीबों में जो चोरी, बदनामी और चरित्र भ्रष्टता कहलाती है; वहीं धनकुबेरों में जाकर व्यापारनीति, कार्यकुशलता एवं दया के नाम से पुकारा जाने लगती है।

विधवाश्रम के नाम पर अनेक विधवाओं का शीलापहरण उनकी प्रतिष्ठा ही बढ़ाता है।

आपका सिद्धान्त है -

टके सेर विद्वान मिलेंगे, टके सेर में बलशाली ।

यह पैसा सब दुष्कर्मों पर, ढक देता चादर काली ।।

सैकड़ों की हत्या कराओ । मजदूरों का शोषण करो, असत्य के आश्रय में रहो, भरपूर ब्लैक करो, अनेक कुसुम कलियों का रस चखो; पर हर साल दश पाँच हजार का दान कर दिया करो ।

फिर देखो कौन तुम्हारे ऊपर उंगली उठाता है? जो उंगली उठाये उसकी उंगली तोड़ दूँ, जो आँख दिखाये उसकी आँख फोड़ दूँ ।

वैसे तो आप पचपन के करीब बसंत और पतझड़ देख चुके थे, पर साठा सो पाठा की कहावतानुसार अभी आप किशोर ही थे । अभी तक आपकी जीवन की रफ्तार बड़ी तेजी से चली आई । तीन बालिकायें आपका साथ न दे सकीं । यदि प्रथम पत्नी आपकी तेज रफ्तार के साथ चल सकी होती तो अभी तक आप दश पाँच बच्चों के पिता और दो चार नाती-पोतों के पितामह बन गये होते, पर

वैसे तो आपने अपने जीवन में अनेक बड़े-बड़े कार्य किये हैं; अन्यथा आप ही बताओ कि आपकी पूँछ के पीछे इतनी उपाधियाँ क्या मुफ्त में जुड़ गई? पर अभी तक आपकी देशोद्धारक बनने की आकांक्षा पूर्ण न हो पायी थी ।

(२)

दो बजे होंगे, कार्यालय में बैठे हुये पण्डित सुधारकजी कुछ कागजाद पलटते हुये सोच रहे थे कि क्या करें, बहुत दिनों से कोई शिकार नहीं फँसा । बेकार बैठे रहते हैं ।

क्या करें? आदि, न मालूम क्या क्या सोचते हुए प्रेस से आये हुये मैटर को जाँचने लगे । उसी समय एकदम विचार उठा कि ऐसे कैसे कार्य चलेगा? कुछ बखेड़ा करना चाहिए ।

हाँ, हाँ, ठीक भी तो है - डूबी हुई समाज का उद्धार करने के लिये “उद्धार” नामक सम्पादकीय लिख दूँ, समाज में खलबली मच जायेगी, साथ में विज्ञापन भी निकाल दूँ कि जो नवयुवक, युवती, विधवा, विधुर ब्याह के इच्छुक हों शीघ्र हमें मिलें, लिखें।

उसी वक्त मेटर प्रेस में पहुँचा और दूसरे दिन देखते हैं कि समाज सुधारक संघ के प्रमुख पाक्षिक समाजोद्धार नामक समाचार पत्र में टायटल पेज पर मोटे मोटे अक्षरों में विज्ञापन छपा है एवं नीचे लिखा था कि निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें।

जातिभूषण व्याख्यानवाचस्पति ज्योतिषाचार्य पण्डित जयशंकर सुधारक, संपादक “समाजोद्धारक” लखनऊ

लखनऊ में जब से “समाज सुधारक” संघ की स्थापना हुई, सौभाग्य से मंत्रित्व का कार्यभार “सुधारकजी” को ढोना पड़ा तथा पत्र के सम्पादक बनने की जुम्मेदारी भी आपके ही कंधों पर आई। अतः डर भी था कमल के समान कोमल करों से बागडोर छूट न जाये।

पर कर अवश्य कोमल है, पर पण्डितजी की बुद्धि तो कोमल नहीं, उसी का परिणाम है कि अभी तक आपकी समाज में अद्वितीयता बनी हुई है तथा हर साल एक न एक पदवी आपके नाम के आगे लगा ही दी जाती है।

(३)

उक्त विज्ञापन को जब सेठ सरदारमलजी ने पढ़ा तो उसी वक्त (५०००) का चेक पण्डितजी के नाम काट दिया, तथा साथ में पत्र में लिख दिया कि खेद है कि मुझे मालूम भी न था कि आप जैसे महान विज्ञों के मंत्रित्व में चलने वाला यह संघ समाज में इतना कार्य कर रहा है, यह रकम ध्रुव फण्ड में रखी जाय।

विशेष क्या यदि आप एक दिन को यहाँ पधारे तो कुछ सेवा आपकी भी कर सकूँ।

(४)

पत्र पढ़ते ही पण्डितजी की बाछे खिल गई तथा उसी ट्रेन से आप इलाहाबाद को रवाना हुये। रास्ते का एक क्षण एक वर्ष सा बीत रहा था। प्रयाग आया, ट्रेन छोड़ सुधारकजी तांगा में सवार हुये और फिर क्या था चल दिये लूटमारगंज की ओर; क्योंकि सेठ साहब का मकान एवं दुकान वही थे।

(५)

सेठ साहब ने मुनीम साहब आदि को भगाते हुये धीरे से कहा कि साहब आपको इसलिए कष्ट देना पड़ा कि भगवान की कृपा से करोड़ों की जायजाद है। पर इन रसोइयों के हाथों की रोटी खाते खाते परेशान हो गया हूँ। परमात्मा की कृपा से तीन शादियाँ हुई पर कहते कहते सेठजी के मुख पर एकदम विशाद छा गया।

चार बच्चे भी है, सभी शादीसुदा है, बड़ा कलकत्ते में व्यापार करता है, बाकी दो यहीं काम संभालते हैं। एक पढ़ता है। बहुयें भी हैं, पर क्या... मैं तो सांसारिक सुखों से वंचित हूँ। बस..... अधिक..... क्या..... अब तो आपकी ही शरण में हूँ। रुपयों की परवाह नहीं।

पण्डितजी तो शुभ मुहूर्त में ही घर से चले थे, हृदय में फूले नहीं समा रहे थे; पर पण्डितजी व्यवहार कुशल थे, प्रसन्नता को छिपाते हुये बोले -

“साहब आपकी करुण कहानी सुनकर तो मेरे रोम रोम खड़े हो गये; अतः कुछ भी हो अब तो मुझे आपकी सहायता करनी ही पड़ेगी।

एक बात सुन लो आप । कल ही दूसरी बत्ती लगवा डालिए एवं मूँछें रंगा डालिये ।”

सेठ साहब बोले - “कल तक कौन ठहरता है?”

“हाँ, तो अभी दो हजार तो दे ही दीजिये खर्च करना पड़ेगा ।” हाथ फटकारते हुये सुधारकजी बोले - सेठ साहब ने उसी वक्त इम्पीरियल बैंक का चेक काट दिया ।

जेब में रखते हुये सुधारकजी कहने लगे -

“हाँ, पर कुमारी कन्या मिलना तो कठिन है तथा आपको विधवा ही ठीक रहेगी । देशोद्धारक भी कहे जावोगे और ब्याह भी होगा । खर्च भी कम होगा ।”

सेठ साहब उदास स्वर में बोले - “जैसा आप उचित समझें, पर बच्चों बाली न हो तो ठीक रहेगा ।”

फिर क्या था तीसरे दिन ही सेठ साहब का उजड़ा हुआ घर बस गया एवं सेठजी के नाम के आगे एक उपाधि और लग गई । वे “देशोद्धारक” कहे जाने लगे ।

(६)

सेठ साहब नवपरिणिता के स्वागत में सब कुछ भूल गये, वे दुकान जाते, पर देवी की प्रसन्नता के लिये । जब उनकी अनेक युक्तियाँ बेकार गई तो उन्होंने अन्तिम हथियार चलाया और अपनी सम्पत्ति की रजिस्ट्री पत्नी के नाम कर दी ।

पर आश्चर्य तो तब हुआ; जब मैंने सुना कि उस विधवा ने देशोद्धारक सेठ सरदारमलजी का तो उद्धार कर दिया । अब उसे एक और वर की आवश्यकता है । ●

प्रेम क्या है?

सुरेश आज बराबर छह माह से कोशिश कर रहा था; पर वह प्रेम की परिभाषा नहीं जान पा रहा था।

जेठ का माह था, रात के दो बज रहे होंगे कि उसकी निद्रा विच्छिन्न हो गई और वह उसी उधेड़बुन में लग गया। वह सोचता कि प्रेम क्या है और प्रेम पात्र कौन है? उसकी विचार शृंखला बढ़ती ही गई और उसने जाल का रूप धारण कर लिया और वह ज्यों ज्यों उसे सुलझाने का प्रयत्न करता, त्यों त्यों और भी उलझता जाता।

वह विचारता है कि “क्या बाजार में चलती हुई रंगीन साड़ियों से सुसज्जित, क्रीम पाउडरों से लिप्त बालिकाओं को तिरछी निगाह से देखना ही प्रेम है। नहीं, नहीं; एकदम नहीं। उसका दिल बोल उठता तो फिर क्या है?”

यह नहीं तो क्या यह है जंगल में गर्मियों के दिनों में शाम के समय चलती हुई ठंडी ठंडी मंद पवन में घूमते हुए पक्षियों की कल कलाहट सुनकर आत्मा में उनके प्रति सहानुभूति पैदा होना ही प्रेम है?

नहीं, नहीं; यह भी नहीं। ये तो वासनाओं की वस्तुएँ हैं, इन्द्रियों के भोग हैं।

“क्या ऐन्द्रिक भोगों का प्रेम से कोई सम्बन्ध नहीं है?”

जिसप्रकार पित्तज्वर वाले को दूध भी कड़वा लगता है; उसीप्रकार जिसकी शक्ति क्षीण हो गई है; उसको इन्द्रियों के भोगों

में कोई रस नहीं रहता; उल्टी घृणा हो जाती है तथा प्रेम तो अमर होता है।

यदि इन्द्रिय भोग को ही प्रेम की वस्तु मानेंगे तो प्रेम की अमरता को धक्का लगेगा।

अतः यह निश्चित है कि इन्द्रियभोग, प्रेम से कोई संबंध नहीं रखते।

यह सोचते सोचते उसका मन ऊब गया था और वह चाहता था कि अब मैं सो जाऊँ, पर सो जाना उसके हाथ में न था, वह तो प्रेम की तिजोड़ी में बंद था। जब तक प्रेम की समस्यात्मक तिजोड़ी न तोड़ ली जाती; तब तक सो पाना मुश्किल था, अतः वह अब सो नहीं पा रहा था।

वह प्रेम को समझना चाहता था एवं उसे पाना भी चाहता था। यदि उसे वह मिल जाता तो उसकी व्याकुलता अवश्य दूर हो जाती। पर वह उस प्रेम को प्राप्त नहीं कर पा रहा था।

वह प्रेम चाहता था, हाँ वह प्रेम चाहता था; पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह एक सुन्दर कामिनी चाहता था; क्योंकि प्रेम का कामिनी से कोई सम्बन्ध नहीं।

कामिनी का सम्बन्ध तो भोग से है तथा भोग तो निश्चित मनुष्य चाहता, चिन्तित नहीं। स्वप्न में भी नहीं।

उसे चिन्ता थी, वह प्रेम का लक्षण जानना चाहता था, पर उसकी इच्छा के विरुद्ध भी चिन्ता से मुक्ति के लिए सो जाना चाहता था।

लोभी और थका हुआ मनुष्य सो जाना चाहता है, पर वह लोभियों में से न था, वह तो चिन्तितों में से था, वह चाहता था प्रेम करना; पर उसे प्रेम पात्र नहीं मिल पा रहा था।

सुरेश विवाहित था, उसके पिताजी एक सम्पन्न साहूकार थे तथा हम्मीरपुर के प्रमुख व्यक्तियों में गिने जाते थे।

हम्मीरपुर छोटा सा गांव है, वहाँ पर पुलिस नहीं रहती है, सुरेश का घर कच्चा था, पर व्यवस्थित। गाँव में यह एक ही मकान था, जिसकी बराबरी दूसरी झोंपडियाँ नहीं कर सकती थीं।

गर्मियों का समय होने से लोग बेकाम थे, उनके पास कोई काम न था, डाकुओं का बोलबाला था, पिताजी को गुजरे अभी चार माह भी न हुए थे। सुरेश ने कार्य तो सब संभाल लिया था; पर चिन्तित एवं सशंक रहता था। आजकल विशेष भय के कारण सुरेश की ड्योड़ी में दो हथियारबंद चौकीदार पहरा देते थे।

सुरेश की माँ अतीव वृद्धा थी। पिताजी की मृत्यु के बाद प्रायः वे बीमार रहा करती थी, परन्तु परसों से उनकी तबियत विशेष बिगड़ रही थी। वैद्यजी आये हुये थे। अतः आज सुरेश और वैद्यजी आंगन में सोये हुये थे, वैसे तो हमेशा सुरेश अन्दर ही सोता था।

सुरेश जगते हुए भी प्रेम को समझने में व्यस्त था, उसे बाहरी वातावरण का बिलकुल ध्यान न था। वह सो नहीं रहा था, वह तो प्रेम के पीछे पागल हुआ जा रहा था।

जब एकदम पड़-पड़ जूतों की आवाज आई तो उठकर बैठ गया। तो क्या देखता है कि सामने बीस-पच्चीस आदमी मय हथियारों के खड़े हुए हैं। वैद्यजी का पता न था, सुरेश ने एकदम घबड़ाकर ड्योड़ी वालों को आवाज लगाई, पर कोई उत्तर न मिला।

आगन्तुक मेहमानों ने अपना कार्य आरंभ किया और लगे उसे मारने। वह विक्षिप्त हो उठा। वहाँ उसकी पुकार सुनने वाला कोई नहीं था और वह सोचने लगा कि क्या प्रेम यही है।

मेरे जैसे पर पलने वाले तथा यह कहने वाले कि पहले हम मरेंगे बाद में आप पर आंच आ पायेगी। वे ड्योड़ी वाले चौकीदार भी गायब थे। दिनरात चापलूसी की बातें करने वाली एवं अर्धांगिनी कहलाने वाली का भी वहाँ पता नहीं था।

वस्तुतः यह लोग प्रेमी नहीं, स्वार्थी हैं। और उसे अब उन डाकुओं पर गुस्सा नहीं आ रहा था, पर प्रेम का ढिंढोरा पीटने वालों पर आ रहा था। और वह एकदम चिल्ला पड़ा -

सब स्वार्थी हैं, प्रेम करना जानते ही नहीं; पर उसकी यह आवाज उन नक्कारखाने में कौन सुनता।

पुत्र की यह हालत देखकर माँ से रहा नहीं गया और प्रेम के आवेश में उसकी आँखों में खून उतर आया, मरी हुई नसों में जोश आ गया।

तथा जिस माँ में पलंग से नीचे उतरने की ताकत न थी, उसमें डाकुओं से लड़ने की ताकत आ गई।

यह देखो! प्रेम का साक्षात् रूप जो कि पाठकों ने तो पहले ही देख लिया; पर कहानी के नायक सुरेश ने अभी अभी देखा।

अन्दर से वह भागती हुई डाकुओं के पास आई और बोली - “पहले मुझे मारो.....।” इतना ही कह पाई कि चक्कर खाकर गिर पड़ी, सुरेश उसकी छाती से लिपट गया।

बेटा! बेटा! कहते हुए उसके प्राण पखेरु वहीं उड़ गये। सुरेश विलाप करने लगा कि हे भगवन्! आपने मुझे प्रेम के दर्शन तो दिये, पर दो मिनट को मैं अब..... समझा..... कि प्रेम..... क्या है.....?



मानवता की ओर

वह विद्रोही था, विद्रोही; क्योंकि उसका जन्म भी संघर्षमय युग में हुआ था तथा वह पला-पुसा भी संघर्षों के बीच था; पर जनता के सामने इस रूप में आज ही आया।

गांधी पार्क में आज उसका जोशीला व्याख्यान सुनकर जनता के कान खुल गये। न मालूम ऐसे मोती कहाँ छिपे रहते हैं तथा उन्हें कोई पहिचानता भी नहीं।

जिस मार्ग से हम रोज गुजरते, वहीं पर अचानक एक अपूर्व बड़ा विशाल वृक्ष देखकर कोई क्यों आश्चर्यचकित न होगा, किन्तु वह वृक्ष वहीं पनपा है, बड़ा हुआ है तथा आज इस रूप में सबके सामने हैं।

‘समर’ का जन्म विजयगढ़ की एक झोंपड़ी में हुआ था, पर उसके चारों तरफ बड़े बड़े विशाल गगनचुम्बी महल खड़े हुये थे। वैसे तो उसका पूरा नाम समर सिंह था; पर आज तक उसे किसी ने समर सिंह कहकर पुकारा नहीं था, अभी तक वह समरा या समर ही कहलाता था। वस्तुतः वह अभी समर (युद्ध) ही था। समर का सिंह (शेर) नहीं। वह आज वास्तव में समर का सिंह बन गया था, तथा जनता ने भी उसे समर सिंह कहकर पुकारा था।

लेकिन समर को समर सिंह मात्र बनने से संतोष न था। वह तो बनना चाहता था ‘अमर’ और अमर से अमरसिंह।

हाँ, तो वह विद्रोही जब स्कूल में फटे पुराने कपड़े पहने जाता और हवेली वाले पड़ौसी सहपाठी रेशमी कपड़े पहिन कर आते; तब देखकर उसका हृदय और आंखें लुभा जाती। पर क्या करें?

वह सोचता - आज का दिन तो बिताना ही होगा। शाम को घर जाकर माँ से कहूँगा कि मैं भी बढ़िया सूटबूट पहिन कर स्कूल जाऊँगा। सब उसकी ओर देखेंगे, वह मारे घमंड के शिर नीचा भी न करेगा, तथा न मालूम और क्या क्या सोचता रहा।

शाम को जब घर पहुँचा तो माँ से बोला - “माँ लमेश तो बहुत बलिया, जूता, औ पेन्थ पहिनता है, हमें भी बनवा दो ना।”

माँ की आँखों में आँसू भर आये। अधिक वह कुछ न कह सकी, बस इतना ही कहा -

“भैय्या वे बड़े आदमी है; अपन उनकी बराबरी कैसे कर सकते हैं?”

इतना सुनना था कि समर के हृदय में बार-बार यही विचार आता कि वे बड़े और हम छोटे, कानों में यही आवाज गूँजती। जहाँ दृष्टि जाती वहीं, सब बड़े-बड़े नजर आते हैं।

वह सोचता - वे बड़े कैसे? मैं कद में उससे चार अंगुल बड़ा हूँ।

पिताजी भी उसके पिताजी से हृष्टपुष्ट मजबूत हैं। उसके पिताजी तो तोंद के कारण बिना वगी के चल भी नहीं पाते तथा मेरे पिताजी ने गये वर्ष ही अमरगढ़ वाले पहलवान को दंगल में पछाड़ दिया था।

जब सुरेश के यहाँ चोर आये तो उसके पिताजी तो कुछ न कर पाये। पर बाबूजी ने तो एक साथ तीन को पकड़ लिया था। फिर उनके पिताजी मेरे पिताजी से बड़े कैसे? मुझसे वह बड़ा कैसे?

मैं पढ़ने में भी तो उससे आगे हूँ, मेरी माँ भी उसकी माँ से कई गुनी सुन्दर एवं स्वस्थ हैं, उसकी माँ पानी भी नहीं भर पाती। पीस भी नहीं पाती, नोकरों से काम कराना पड़ता है।

इतना सब होते हुये भी वे बड़े और हम छोटे, यह क्या? इन सब बातों को देखते हुए उसका हृदय या अन्तरात्मा यह स्वीकार नहीं कर सकती थी कि वे बड़े हैं और अपन छोटे।

उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि बड़े किन्हे कहते हैं? जितनी भी वह बड़े और छोटों की परिभाषा जानता था; सबको उस पर घटा चुका था। अभी तक उनके बड़प्पन का अनुभव किसी भी परिभाषा से न हुआ। अन्ततोगत्वा वह निरीह बालक निर्णय न कर सका।

आखिर उससे न रहा गया और पूँछ ही बैठा कि माँ वे बड़े कैसे? माँ ने रुंधे कंठ से कहा - “वे पैसे वाले हैं, धन वाले हैं, तुम्हारे पिताजी उनके यहाँ नौकर हैं।”

भोला बालक अब समझा कि “जिनके पास बहुत धन होता वही बड़े कहलाते हैं” किन्तु यह परिभाषा उसे रुचि नहीं, उपयुक्त मालूम न हुई और उसका दिल विद्रोह करने को तैयार हो गया। परिभाषा बदलने के वास्ते भड़क उठा।

उसी दिन से उसके मानस में उक्त परिभाषा के विरुद्ध विद्रोह हिलोरे लेने लगा, बढ़ती हुई चन्द्रकला के समान विद्रोह की मात्रा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई और आज उसने अपना अन्तिम रूप धारण कर लिया।

आज उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सारी असमानताओं का उत्तरदायित्व उसी पर है।

जब से वह सभा में भाषण देकर आया, तभी से बराबर उसके दिमाग में वहीं विचारधारायें चक्कर काट रही थी। वह सोचता था - क्या वास्तव में आर्थिक विषमता ईश्वरीय देन है?

पर एकदम अन्तरात्मा बोल उठी - नहीं, नहीं; कदापि नहीं!

इसी तरह रात बीत गई, सुबह हुआ, दश बज गये, पर वह इसी उधेड़बुन में लगा रहा।

यह तो वह निश्चय कर ही चुका था कि कुछ भी हो इस विषमता का नाश करना है, पर किया कैसे जाय?

किस तरीके से कार्यक्रम प्रारंभ किया जाय? क्या करूँ? कैसे करूँ? अभी वह इन्हीं ग्रन्थियों को सुलझाने में लगा था।

बारह बज गये, पर उसे न तो खाने की सुध थी और न शौच वगैरह ही गया था, न नहाया-धोया तथा न बाल ही संभाले थे ।

सब कुछ घर परिवार भूल कर अपनी धुन में मस्त था ।

जब माँ आई और धीरे से बोली भैया! क्या खाना भी न खाओगे? पिताजी बहुत नाराज हो रहे हैं कि इस नालायक ने सबकुछ बर्बाद कर दिया । मैं तो सोचता था कुछ सहारा हो जायेगा । पर जिनसे पलना था, उन्हीं की निन्दा करके मेरी नौकरी भी छुड़वा दी । अब क्या खायें? न मालूम इस निखटू को क्या सूझी?

खैर! वे तो अब गये । चल बेटा! अब रोटी तो खा ले । अब आगे कभी ऐसा न करना ।

माँ कहे जा रही थी; पर वह कुछ भी न सुन रहा था । माँ तो उसे देख रही थी, पर माँ को वह नहीं देख रहा था । वह तो क्रान्ति करने जा रहा था । वह तो अपने विचारों में मस्त था । न उसे पिताजी के शब्दों की परवाह थी, न माँ के मृदुल प्यार की और न पड़ोसियों की फुसफुसाहट ही उसे विचलित कर सकती थी ।

न पूँजीपतियों के धन का नजारा उसकी भावनाओं को दबोच सकता था । और तो और भूखा पेट भी उसे रोकने में समर्थ नहीं था । पिताजी की नौकरी की उसे परवाह नहीं थी । उसे चिन्ता है तो सिर्फ गरीबी-अमीरी की विषमता को दूर करने की ।

उसकी आँखें लाल हो गई थी, हृदय जल रहा था, माथे पर सिकुड़ने पड़ी हुई थी, रोम रोम से स्वतंत्रता एवं समानता की भावना फूटी पड़ रही थी । चेहरा मूकभाव से कह रहा था - गरीबों का रक्त पीकर महलों में रहने वालों को बड़े कहलाने का क्या अधिकार है?

क्रोध और चिन्ता से घिरा हुआ युवक माँ को कुछ उत्तर न दे सका ।

वह उठा और चल दिया । न मालूम कहाँ? माँ व्याकुल होकर चीख उठी । बेटा कहाँ.... कहाँ..... जा रहे हो तुम? बस, मात्र इतना ही उत्तर मिला “मानवता की ओर” । ●

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

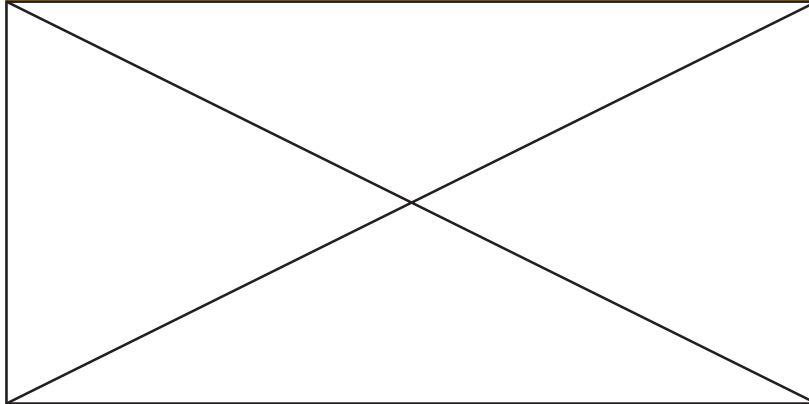
१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका	५०.००	४५. निमित्तोपादान	६.००
२-६. समयसार अनुशीलन भाग १ से ५	१२५.००	४६. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	५.००
७. समयसार का सार	३०.००	४७. मैं स्वयं भगवान हूँ	५.००
८. गाथा समयसार	१०.००	४८-४९. ध्यान का स्वरूप/रीति-नीति	४.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका	५०.००	५०. शाकाहार	५.००
१०-१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग १ से ३	९५.००	५१. भगवान ऋषभदेव	४.००
१३. प्रवचनसार का सार	३०.००	५२. तीर्थंकर भगवान महावीर	३.००
१४. कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन	२०.००	५३. चैतन्य चमत्कार	४.००
१५. नियमसार : आत्मप्रबोधिनी टीका	५०.००	५४. गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००
१६-१७. नियमसार अनुशीलन भाग १ से ३	७०.००	५५. गोम्मटेश्वर बाहुबली	२.००
१८. छहढाला का सार	१५.००	५६. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	२.००
१९. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार	३०.००	५७. अनेकान्त और स्याद्वाद	३.००
२०. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय	८.००	५८. शाश्वत तीर्थधाम सम्मदशिखर	६.००
२१. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००	५९. बिन्दु में सिन्धु	२.५०
२२. परमभावप्रकाशक नयचक्र	४०.००	६०. पश्चात्ताप खण्डकाव्य	१०.००
२३. चिन्तन की गहराइयाँ	३०.००	६१. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वंदना	२.००
२४. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	२०.००	६२. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद	२.५०
२५. धर्म के दशलक्षण	२०.००	६३. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद	१.००
२६. क्रमबद्धपर्याय	२०.००	६४. समयसार पद्यानुवाद	३.००
२७. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (सम्पूर्ण)	३०.००	६५. योगसार पद्यानुवाद	१.००
२८. बिखरे मोती	१६.००	६६. समयसार कलश पद्यानुवाद	३.००
२९. सत्य की खोज	२५.००	६७. प्रवचनसार पद्यानुवाद	३.००
३०. अध्यात्म नवनीत	१५.००	६८. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	१.००
३१. आप कुछ भी कहो	१५.००	७९. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद	३.००
३२. आत्मा ही है शरण	१५.००	७०. नियमसार पद्यानुवाद	२.५०
३३. सुक्ति-सुधा	१८.००	७१. नियमसार कलश पद्यानुवाद	५.००
३४. बारह भावना : एक अनुशीलन	१६.००	७२. सिद्धभक्ति	१०.००
३५. दृष्टि का विषय	१०.००	७३. अर्चना जेबी	१.५०
३६. गागर में सागर	७.००	७४. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित)	५.००
३७. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	१२.००	७५. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित)	५.००
३८. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	११.००	७६-७७. बालबोध पाठमाला भाग २ से ३	७.००
३९. रक्षाबन्धन और दीपावली	५.००	७८-८०. वीतराग विज्ञान पाठमाला १ से ३	१४.००
४०. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम	५.००	८१-८२. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ से २	११.००
४१. युगपुरुष कानजीस्वामी	५.००	८३. भगवान महावीर और उनकी जन्मभूमि	३.००
४२. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	१५.००	८४. मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ : एक अनुशीलन	५.००
४३. मैं कौन हूँ	१०.००	८५. आगम के आलोक में-समाधिमरण या सल्लेखना	५.००
४४. रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का	१०.००	८६. ये हैं मेरी नारियाँ	५.००

डॉ. भारिल्ल पर प्रकाशित साहित्य

१. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (अभिनंदन ग्रंथ)	१५०.००
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कृतित्व - डॉ. महावीरप्रसाद जैन	३०.००
३. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य - अरुणकुमार जैन	१२.००
४. डॉ. भारिल्ल के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन - अखिल जैन बंसल	२५.००
५. गुरु की दृष्टि में शिष्य	५.००
६. मनीषियों की दृष्टि में : डॉ. भारिल्ल	५.००
७. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन - डॉ. सीमा जैन	२५.००

प्रकाशनाधीन

८. शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन - नीतू चौधरी
९. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व - शिखरचन्द जैन
१०. धर्म के दशलक्षण एक अनुशीलन - ममता गुप्ता



प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

1. श्री विनयकुमार जैन एवं श्रीमती सुदेश जैन, जयपुर	2500.00
2. श्रीमती प्रमिला छाबड़ा, जयपुर	1100.00
3. श्री भागचन्द सौरभकुमारजी जैन, जयपुर	1100.00
4. श्रीमती लक्ष्मी पाटनी, जयपुर	1100.00
5. श्रीमती पुष्पलता जैन (जीजीबाई) ध.प. अजितकुमारजी जैन, छिन्दवाड़ा	1100.00
6. श्री अमित जैन, दिल्ली	1100.00
7. श्रीमती कोमलबाई दीपचन्दजी जैन, बड़जात्या, इन्दौर	1100.00
8. श्रीमती लक्ष्मी भारिल्ल, जयपुर	1000.00
9. श्रीमती सुमन जैन ध.प. सुरेशचन्दजी जैन, बारां	1000.00
10. गुप्तदान	1000.00
11. श्री मदनलालजी पाटनी, मुम्बई	501.00
12. श्री कैलाशचन्दजी जैन, ठाकुरगंज	501.00
13. श्री मानिकचन्दजी जैन, 'एडपैनवाले' मुम्बई	501.00
14. श्रीमती रश्मिदेवी वीरेशजी कासलीवाल, सूरत	501.00
15. श्री भागचन्दजी कालिका, उदयपुर	501.00
16. श्री चन्द्रकांतजी जैन, जयपुर	500.00
17. श्रीमती सुनीता जैन, जयपुर	500.00
18. श्री विजयकुमारजी गंगवाल, जयपुर	500.00
19. श्रीमती स्वस्ति सेठी, जयपुर	500.00
20. श्री जिनम सेठी, जयपुर	500.00
21. श्री नरेशजी पाटनी, जयपुर	500.00
22. श्री कैलाशचन्दजी अजितकुमारजी जैन, फूप भिण्ड	500.00
23. श्री ताराचन्दजी सोगानी, लालकोटी, जयपुर	500.00
24. गुप्तदान	500.00
25. गुप्तदान	500.00

कुल योग 19,605.00